वैदिक साहित्य में देवर्षि नारद

वैदिक साहित्य

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज के रूप-रंग वृक्ष-हास उत्थान-पतन, समृद्धि-दुरवस्था के निचित्रत ज्ञान का प्रधान साधन तत्त्वावधारी साहित्य होता है। संस्कृति के उद्विष प्रसार तथा प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। किसी भी समाज के वातावरक स्वरूप को जानने के लिए उस काल के साहित्य की शारण लेनी पड़ती है, क्योंकि जीवन के सभी पक्ष चाहे वे राजनीतिक हों या धार्मिक अथवा दार्शनिक, उसे प्रभावित करते हैं। भारतीय संस्कृति में व्यक्ति के लिए जन्म से भी पूर्व से लेकर भूतपूर्वत होने वाले सोलह संस्कारों का अवतंत्रित महत्व है। इन संस्कारों का सम्भादन वेद-मन्त्रों के बिना कठोर सभ्य नहीं है। हमारे दैनिक प्रार्य, देव-देवता, उपासना, अनुष्ठान, पर्य, यज्ञ, मान्यताएँ एवं परम्पराएँ- सभी वेदों से प्रभावित हैं। श्री लोकमान्यतिलक ने तो हिन्दू धर्म का लक्षण ही “प्रमाणपविभयवेदो” किया है।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति विश्व की सभ्यताओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है तथा आज भी अपनी मौतकाता बनाए हुए है। वर्तमान मूलों एवं मान्यताओं का मूल जानने के लिए हमें जिस साहित्य की शारण लेनी पड़ती है, वह है- वैदिक साहित्य।

वेद का महत्व

वैदिक साहित्य वह ज्योतिष्टम्भ है जिसके प्रवाह में हम अपने गौरवमय अतीत की जाँच की वैदिक देवल सकते हैं। इस दृष्टि से वेदों के महत्व को जानने के लिए इतना ही पर्याप्त है कि प्रभु धर्मशास्त्रकार महाराज ‘मुनि’ ने अपने ग्रन्थ में, वेद को सभी धर्म के मूल के रूप में स्थीरकार किया है—
“वेदोमखिलो धर्ममूलम्”

हमारे जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है जिसका दर्शन हमें वेद में न होता हो। तीनों लोक, चारों वर्ण, चारों आश्रम, यहाँ तक कि भूत भवतु (चर्मगान) और भविष्यतु का जान वेदों के द्वारा सम्बन्ध है-

“चतुर्विंशत्य वयो लोकाग्निचङ्गावरुङ्गचार्मगानाद: पृथवेः।
भूतां भयं भविष्यं च सर्वं वेदवत्य प्रतिष्ठार्थ।” ॥

वेद की इस सर्वज्ञानमयता एवं सर्वभावनाकार्य द्वारा ही भारतीयों की यह मान्यता है कि हम तभी शिक्षित लोगों के लिए वेद का आध्यात्म कर्त्ता परमात्मयक है-

“यो ज्ञानात्मिक क्रियाविभाग संयमस्ते श्रमम्।
न जीवननेव शूर्ततवात गुणाः च सावधानः॥” ॥

साहित्य की शृष्टि से वेदों की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है-“कथवर्ननीतिः परिपूर्णस्तिं स्वयम्।” अर्थात् वेदवाक्यों में वैदिक अर्थाण्विकों को कवि ही गाना गया है और समग्र जगतु को देव का काण्य कहा गया है-“परम पद्मक् देवस्य काव्यम्।” वेदतांतरोपनिषदेः में कहा गया है कि श्रुति के आरम्भ में इश्वर ने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और उसके लिए वेदों को भेजा-

“यो बह्याऽणं विद्या धारणाय यो व वेदांश्च भ्रमणोत्तित तद्भव॥”

आचार्य बलदेव उपाधिय पेशेवर का गहरा बतलाते हुए कहते हैं-“वेदों से भारतीयों का जीवन ओगोलित है। हमारी उपासना के भाजन देवगण, हमारे संस्कारों की वश बतलाने वाली पद्ध्ति तथा हमारे मत्तश्च को प्रेरित करने वाली विचारधाराइ इन सबका उद्देश्य स्थान वेद हैं। तथा शृतियां एवं वेद की सहायता से ही भारतीय दर्शन के विविध विकास को हम भली-भाँति समझ सकते हैं। उपनिषदों में समग्र अत्यतक तथा नाटिक दर्शन के तत्त्वों की बीजपूर्ण उपलब्धि

1. महाभ- 2/6।
2. वही- 12/97।
3. वही- 2/198।
4. शेल्लाओ- 6/8।
होती है।” अतः भारतीय दर्शन के आविभाव एवं विकास को जानने के लिए वेद ही एकमात्र महत्वपूर्ण स्तोत्र है।

वेद का स्वरूप

‘विद्’ (जानना) धातु से नियन्त्र ‘वेद’ शब्द का अर्थ है—ज्ञान। इस रूप में वेद को अन्वत माना का भण्डार माना जाता है। अदाविद्विगीय ‘विद् माने’ धातु से ‘घन’ प्रत्यय के योग से नियुक्त वेद का शब्द का अर्थ होता है—“वेद्य ज्ञानाति धर्मविद्—पुरुषार्थचतुष्टयोपायान् अनेन इति वेदः।” अर्थात् जिसको द्वारा धर्मार्थकामना रूप पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करने वाले उपयोगों को जाना जाता है, उसे वेद कहते हैं। दिवाविद्विगीय ‘विद् सतायाम्’ धातु से भाय में ‘घन’ प्रत्यय के योग से नियन्त्र वेद शब्द अपने सनातन सतृ रूप को बताता है। महार्षि वेद व्यास ने ‘वेद’ शब्द के इसी सतृ रूप का स्पष्ट प्रतिपादन करते हुए महाभारत में लिखा है—

“अनाविद्विगा नित्या वामुन्यस्पत्या स्वयम्भुवा।
आदेव वेदचं विद्य्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।”

श्रीमद्भागवतकार के अनुसार, वेदों में जिन कर्मों का विधान किया है, वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है, वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान् के स्वरूप हैं तथा उनके स्वाभाविक श्राव प्रश्नास एवं स्वयंप्रकाश मान हैं।

“वेदप्रणालिते धर्मस्वाधर्मितलिपिपर्यः।
वेद नारायणः साक्षात् स्वयम्भूशरिति शुद्धम्।”

तद्वलिक ‘विद्या लाभे’ धातु से करण अर्थ में ‘घन’ प्रत्यय करने पर नियन्त्र वेद शब्द—“विद्यति किन्तु लम्बते धर्मादिपुरुषार्थानु अनेन इति वेदः।” रुद्धाविदगीय ‘विद्’ विचारणे धातु से करण अर्थ में ‘घन’ प्रत्यय के योग से नियन्त्र वेद शब्द “किन्तु विचारार्थति सूच्याविप्रक्रियायाम् अनेन इति वेदः।”

1. वल्लभ उपाध्याय—बौद्धिक साहित्य और संस्कृति।
2. भार ४०—६/१/४०।
इस प्रकार वेद शब्द सृष्टि प्रक्रिया विचार रूप अर्थ को अभिव्यक्त करता है। महंति वेद व्यास इसी बात को इन शब्दों में कहते हैं—

“सर्ववेदमेवेद्मातमनांस्त्वांस्त्वमोनिना।
प्रजा: सृष्टि वथपूवं याश्च मध्यनुषुरासे।”

चुराइमणीय “विवेक चेतनार्थयानिवासेषु” धातुसे देख, आक्षणू और निवास इन तीनों का करण अर्थ में ‘चन्त’ प्रत्यय करने से निषेध वेद शब्द सृष्टि के आदि में पूर्वकल्प के अनुसार कर्म, नाम आदि का आल्मान्व होना अर्थ प्रतीत होता है। मनु साम्राज्य ने वेद शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि प्रलय के बाद नृत्य सृष्टि के आरम्भ में विधाता, वैदिक निर्देशानुसार कथुजगत के नाम कर्म तथा रूपादि का विधान करते हैं; जिससे पूर्वकल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी नामादि का व्यवहार होता है—

“सर्वथा तु स नामानि कर्माणि च पृथवीकृष्ठ।
वेदार्द्वेब: एवादौ पृथवसंस्थाश्च निर्ममे।”

इस प्रकार अपरिपूर्त विभिन्नरूप वाक्य धातुओं से निषेध वेद आधि—
भौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक इन त्रिविध अर्थों के प्रतिपादक पृथिविकृष्ठ पूर्वकल्प के साधु समस्त जन—विज्ञान के संवाहक भारतीय मनीषियों—सन्तोषियों के प्रत्यक्षाखण्ड के महानु आदर्श हैं। उन्होंने विश्व के आध्यात्मिक विचन्त—विश्वक विस्ततन तत्त्वों को ही वेद में प्रस्तुत किया है।

“मन्त्रबाहिरणियोवेदनामधेववम्”

अर्थात् मन्त्रो वाली मूल साहित्य— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सावित्र वेद, और अथवा वेद ही वेद नहीं हैं अपि तु मन्त्रो वाली मूल साहित्य तथा उनके व्याख्यानक सभी ग्रन्थ— ब्राह्मण, आरण्यक और उपाणिषद भी वेद हैं।
संकेत में,

1. भृति पुस्तक 3/9/43.
2. मृत्तिका 1/21.
(अ) सहिता भेद से वेद चार प्रकार का है—

(1) अग्रवेद—ज्ञानार्थों का वेद
(2) यजुर्वेद—यजुर्वेदों (मन्त्रों) का वेद।
(3) सामवेद—सामा का वेद।
(4) अपरवेद—अपरों का वेद।

(आ) शैली—भेद से वेद तीन प्रकार का है—‘वेदवर्गी’

(1) प्राचीन वेद—अर्थात् अग्रवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अपरवेद के छन्दोंश्रेणी मन्त्र
(2) गद्यात्मक वेद—अर्थात् यजुर्वेद और अपरवेद का गद्यात्मक अंश और ब्राह्मण—ग्रन्थों, आरण्यकों और उपनिषदों का गद्य भाग।
(3) गीतात्मक वेद—अर्थात् सामवेद का गीतात्मक अंश।

(इ) मूल और व्याख्या भेद से वेद दो प्रकार का है—

(1) ज्ञानार्थों और मन्त्र, जिन्हें सम्मिलित रूप से मन्त्र कहा जाता है।
(2) मन्त्रों की व्याख्यावाला ‘ब्राह्मण’ भाग।

इस प्रकार वेद के विभिन्न रूपों को स्पष्ट करने के लिए पुष्करणक्रम-पुष्करणक्रम शब्दावली का व्यवहार किया जाता है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को निम्नलिखित पाँच भागों में विभाजित किया जाता है—

(1) सहिताएँ
(2) ब्राह्मण ग्रन्थ
(3) आरण्यक ग्रन्थ
(4) उपनिषद ग्रन्थ
(5) वेदाङ्ग

सहिताओं की विषय चर्चा को बारे में श्रीग्रामदासवताकार का कहना है—

“त्रूसः वजुः सामाथवर्ज्ञानः एवदानः पूर्वोऽविभिन्नुस्ते। शास्त्रादित्वं स्तुतितस्तैं प्रायेद्विचारत् व्याधातुः क्रमात्।”
अर्थात् ऋक् का विषय है — 'शस्त्र'। 'शस्त्र' उसे कहते हैं जो मन्त्रों द्वारा उच्चारित होता है, तथा जिसका गायन नहीं किया जा सकता है। 'इज्या' अर्थात् यज्ञकर्म, यजुष विषयक है, तथा साम का विषय है 'स्तुति-स्तोम' अर्थात् स्तुति के लिए प्रयुज्ञपान ऋक् समुदाय, जो उद्देश्य द्वारा गाया जाता है। यह स्तोम निःप्रयोग, पत्रदश, लम्बादश आदि अनेक प्रकार का होता है। जहाँ तक अथर्व का प्रश्न है, इसका प्रतिपाद विषय है — 'प्रायविचार' श्रीधर स्वामी का कथन है कि प्रायविचार का लक्ष्य ब्राह्मकर्म, ब्रह्मा नामक ज्ञातिक का कर्म है।

सहिता भाग में देवर्षि नारदः

ऋग्वेद सहिता:

यह वेद विश्व नमस्कार के योग्य है, जिसमें से ऋषि शास्त्रकार एवं कवि लोग अपने—अपने विचार स्वच्छा से निकालते रहते हैं—

‘नमो तत्स्ये नृत्ये यां वृहन्ति पदे पदे।
ऋषयः शास्त्रकारार्थं कवयस्य यथामति।’

ऋग्वेद सहिता में ऋचाओं का संग्रह है। ऋचा’ (मन्त्र) उसे कहते हैं जिसके द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है—“ऋच्यन्ते स्तुत्यन्ते देवा अनया इति ऋच्योः” अथवा चरण एवं अर्थों से युक्त वृत्तिय मन्त्रों को ऋचा कहते हैं—

“पादेनार्थ्यन चोपेता वृत्तियम् मन्त्राः।”
ऋग्वेद के पुराण सूक्ष्म के अनुसार इन ऋचाओं की उत्पति विशाल यज्ञपुर्ण से ही बताई गई है—

“तस्मात्यायःत्वलस्यहुः: ऋचः सामानिज्जिते।”

सहिता शब्द का अर्थ है—संकलन। इस प्रकार ऋग्वेद सहिता’ का अर्थ हुआ—छन्दोबद्ध मन्त्र का संग्रह। ऋग्वेद की बाह्य स्पर्श्या के अन्तर्गत उसकी विभिन्न शालाओं, मण्डलों और ऋचाओं की संख्या इस प्रकार है—

1. जैन-न्यासूकृ.
2. ऋचको- 1/34/9.
ऋग्वेद की शाखाएँ

महाभाष्यकार पतंजली के अनुसार ऋग्वेद की शाखाएँ हैं---

“एक विशेषध्या बाहुव्यूहम्” किंतु ‘चरणव्यूह’ के रचनिता ने ऋग्वेद की
केवल पाँच ही शाखाओं का उल्लेख किया है---

1. शाकल शाखा 2. राष्ट्रक शाखा 3. आश्वलायण शाखा
4. शाङ्करायण शाखा 5. माणपकायण शाखा।

उपयुक्त शाखाओं में से भी ऋग्वेद की केवल शाकल शाखा ही सम्पूर्ण रूप
से उपलब्ध होती है अतः उसी के आधार पर ऋग्वेद का विभाजन निम्न प्रकार है---

ऋग्वेद का विभाजन :

ऋग्वेद की शाकल शाखा में चराओं का विभाजन दो प्रकार से प्राप्त होता है---

1. अश्वक्रम के अनुसार
2. मण्डलक्रम के अनुसार

अश्वक्रम के अनुसार, ऋग्वेद की सम्पूर्ण चराओं को आठ अष्टकों में
बूँटा गया है, प्रत्येक अष्टक में अल्पायों की संख्या भी आठ ही है। अल्पायों में
वर्ग हैं तथा प्रत्येक वर्ग में पाँच से लेकर नौ तक चराओं उपलब्ध होती है। संकेत
में, अश्वक्रम के अनुसार ऋग्वेद सहिता में---
8 अष्टक 64 अध्याय तथा 2006 वर्ग हैं।

मण्डलक्रम के अनुसार ऋग्वेद की सम्पूर्ण चराओं दस मण्डलों में
विभक्त है।

इन दस मण्डलों के आधार पर ऋग्वेद को ‘दशाय’ कहा जाता है।
ऋग्वेद के प्रत्येक मण्डल में अनुवाक हैं और अनुवाकों में सूक्त हैं। पुनः प्रत्येक
सूक्त में चराओं हैं। इस मण्डल क्रम के अनुसार, ऋग्वेद सहिता में---
10 मण्डल, 85 अनुवाक, 1028 सूक्त तथा 10580 चराओं (मन्त्र) हैं।
विषयस्तु

ऋग्वेद सहिता में मुख्यतः विभिन्न देवताओं की याणिक स्तुतियों का संकलन किया गया है; जो तत्वजान विषयक विचारों से परिपूर्ण होने के कारण मानव-जीवन के लिए उत्तम उपयोगी हैं। इस प्रकार इनमें कुल तीसरा देवताओं की स्तुतियों की गयी हैं, जिनमें इन्द्र तथा अम्बिया का सर्वप्रमुख स्थान है।

कहीं-कहीं नदी, पर्याय, सूर्य, उषा, गंगा, वरुण, इत्यादि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक-विनिर्माण भी किया गया है। ऋग्वेद में लगभग बीत सूक्त ऐसे हैं जिन्हें संवाद-सूक्त कहा जाता है। इनमें पुरज्ज-पुरेण्यी, यम-यमी, सरसा-पणी, तथा विश्वाविन्द्र-नदी संवाद सूक्त बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्हें नाटकों तथा काव्यों का बीजभूत स्थीरक किया जाता है।

विषयस्तु की उपन्यास से ऋग्वेद के समस्त सूक्तों को मुख्यतः दश वर्णों में रखा जा सकता है- 1. देवता सूक्त, 2. धृतपद, 3. कथा, 4. संवाद, 5. शान्तित, 6. तत्त्वज्ञान, 7. संसार, 8. गानिक, 9. लेखक तथा 10. आद्य िन्द्र। ऋग्वेद का प्रास्थि ‘अम्बिया सूक्त’ से तथा अन्ति ‘संसार सूक्त’ से होता है।

ऋग्वेद में देवर्षि नारद-

ऋग्वेद के अष्टम मंडल के तेहरवे सूक्त के तृतीय अनुवाक में देवर्षि नारद संनद्ध रहते हैं। उन्होंने अनुवाक के एक से तीसरे पर्याय मनो को प्राप्ति नारद, मनो निम्नलिखित हैं-

"इन्द्र: सुतेशु सोमेशु क्रान्तु पुनीत उक्ख्ययः।
विदे वृधस्व दक्षरो महानन्दे प।।
स प्रथमे व्योमनि देवानां सवने कृष्णः।।
सुपारसु: सुश्रवस्तम समस्मुद्धिः।।
तमहे वृजसात्यं इन्द्रं भरस्य गुप्तिम।।
भवं न: सुमने अन्त्म: सख्व वृधेऽ।।
इन्द्र त इन्द्र गभोरो राति: क्षरति सुन्वतः।।
मन्दानो अस्य वहिषो वि राजसि।।"
नूनं तविन्द्र दाहिन्द नो यत्वा सुन्त्व ईमेहि।
रथिन निशिचत्रमा भरा स्वर्दमु॥
स्तोताय यत्वे विचरणिरतिप्रथशर्च्यति॥
वया हवानु रोहते जुष्पन्त यतु॥
प्रत्यवजया मिरः श्रृणुश्री जागिर्तुईवमु॥
मदेम्ये वविश्वा नुकुलत्वेन॥
कीठन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता चलि॥
अत्य चिया य उच्चते पतिरिव॥
उत्तो पतिर्य उच्छते कृष्णनामको इहशी।
नमो वृधीरकशुभि: सुते रण॥
स्तुहि श्रुतं विपाँचतं हरी यत्वं प्रसज्जियो।
गन्तारा दशुोष्णो गृहं नमस्विषि॥
तुतुज्यानो महेन्देुश्वाभि: गृहितशुभि॥
आ याहि यज्ञमालुभि: शमिद्वि ते॥
इन्द्र शाविछ सत्तपते रथिन गृहान्ति धारय।
श्रवं: सूरिभ्यो अमृत वसुस्वनम्।
हवे त्वा सूर उविवे हवे मध्यव्यदीवे दिव॥
जुष्णाण इन्द्र सरिस्किंच आ गवी॥
आ तू गवी प्र तु वध मञ्चवा सुतवल गोमत॥
तन्नु तनुप्त पूर्यं यशो विदेः॥
बच्छक्रासि परावतं वयद्वीचति वृत्तहनू।
यद्वा समुद्रे अन्धरोऽविद्वित्वसि॥
इन्द्रं वर्षान्तु नो मिरः इन्द्रं सुतास इन्द्र।
इन्द्रवे ह्रावणतिविवशे अराणिपु॥
तमिहिद्वि अवस्थो: प्रवतेवत्सेवितिभि।
इन्द्रं क्षोणेरवर्धमन्यथा इव॥
त्रिकुटकेषु चेतन देवासो यज्ञमन्नतः
तमिवद्वित्तमु नो विषय: सवार्द्धम्।।
स्तोत्र यस्ते अनुवात उक्त्वान्युक्तः दश्ये।
शुचिः पावक उच्चयते सः अभ्युतः।।
तद्विद्वस्य चेतन्ति यहं प्रत्वेषु धार्मसु।
मनो यत्रा वि तद्विद्वी विवेजः।।
यदि मे सर्वव्यथार इमवर्य पाहन्यथः।।
बेन विहया अति विष्यो अस्तारिम्।।
कदा ते इन्द्र गिरि: स्तोत्रा भवाणि शतमः।।
कदा नो गयो अश्रये वर्षी मधः।।
उत्त ते सुपुष्टो हरी वृषणा वहतो रथमः।।
अज्ञातस्य महिन्तम् यमीमहेः।।
तमीमस्ते पुरुषदत्तं यहं प्रत्वेषस्तिविभिः।।
नि वहिष्ठ्यं प्रये सदृश्यं निता।।
वर्षस्वा सु पुरुषदत्त ऋषिपृष्टाभिनिविभिः।।
धुक्षरत् पिण्यादिशिः षवः च न:।।
इन्द्र त्वविश्रवतित् सत्रत्वा अभिः।।
ऋषिवियम्यं ते धियं मननो युजः।।
इह त्वा सेवास्या सुजान: सोमपीत्ये।।
हरी इन्द्र प्रत्तदसु अभि वस्तः।।
अभि स्वस्तु मे तव रक्षाः सक्षत श्रीयम्।।
उत्तो महत्तत्वपरिवशो अभि प्रयः।।
अयं दीपायु चक्षसे प्राचि प्रत्यत्वेद्धः।।
सितिते यज्ञमातश्चविचंहय।।
वृष्णावनिन्त्रे ते रथ उत्तो ते वृषण हरी।
वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः।।
यजुर्वेद संहिता:

यजुर्वेद के बाद रचना क्रम और विषय की दृष्टि से यजुर्वेद का नाम आता है। यजुर्वेद—संहिता, यजुर्वेद का संग्रह है। यजुर्वेद का अर्थ होता है—जिसमें अलदारों की संख्या निर्देश न हो “अनियमताक्रसस्वानो यजुः।” इसके अतिरिक्त “गद्यर्मको यजुः” अर्थात् गद्य में रचे गये मन्त्रों को यजुर्वेद कहते हैं। यजुर्वेद को कारण ही यह वेद यजुर्वेद कहलाता है। “श्रेष्ठ यजुः शब्द” 2 का अर्थ है जहाँ और सम भिन्न गद्यर्मक मन्त्रों का अभिधान यजुर्वेद है। इसमें सुख्वतमा वैदिक कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है।

यजुर्वेद की ‘अध्युपेद’ भी कहा जाता है इसका कारण यह है कि यह वेद ‘अध्युपेद’ नामक होता है मन्त्रपाठ के लिए है। वैष्णव शास्त्र ने अपने महाभाष्य में अध्युपेद अर्थात् यजुर्वेद की एक धारा एक शास्त्रों होने का उल्लेख किया है। यजुर्वेद संहिता के मुख्य देवता यजुव का आचार वेदवाच के शिशु वैष्णवान्त्र मध्य है। महाभाष्य, चरणद्वृढ़ तथा पुराणों के अनुसार यजुर्वेद की 100, 101, 109, 86 इत्यादि शास्त्रों का पता चलता है; किन्तु आजकल यजुर्वेद की केवल 3: शास्त्रों ही उपलब्ध होता है—

शुक्ल यजुर्वेद की

1. वाजसेनेय संहिता (भाध्यन्दिन)
2. जैन सूत—2/1/37.
क्रृष्णयजूर्वेद की सहिता
२. काण्य सहिता
१. कठ सहिता
२. कपिदल सहिता
३. नैममणी सहिता
४. तैतिषोय सहिता

यजुर्वेद के अध्ययन के बिना बाद के ब्राह्मण ग्रन्थों के कर्मकाण्ड सम्बन्धी बाद-विवाद के रहस्य को नहीं समझा जा सकता और ब्राह्मणों के बाद-विवाद को समझे बिना उपनिषदों के रहस्यात्मक विचारों का भी ज्ञान नहीं होता।

शुक्ल यजुर्वेद—

शुक्लयजुर्वेद की सहिता का नाम ‘वाजसनेयी सहिता’ है। इसका यह नाम याजवल्क्य वाजसनेय कृष्ण के नाम पर पड़ा है। क्योंकि सूर्य ने ‘वाज’ अर्थात् चोड़ा का रूप धारण करके याजवल्क्य कृष्ण को इस सहिता के मन्त्र प्रदान किये थे। इसी कारण से इसे ‘माध्यमिन सहिता’ कहा जाता है। शुक्ल यजुर्वेद में 40 अध्याय हैं। इसमें राजसूय, वाजवेय, अस्वमेध, सर्वमेध आदि प्रमुख यज्ञों का वर्णन है। इसका अंतिम 40वाँ अध्याय ‘ईशोपनिषद्’ कहलाता है। विविध प्रकार के यज्ञों का विधान होने के कारण शुक्ल यजुर्वेद का विशेष महत्त्व है। इसमें वर्णित अनेक यज्ञों का कारण ही आयों की सभ्यता—संस्कृति की यज्ञ—संस्कृति के नाम से जाना जाता है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी सहिता में चुल 40 अध्याय, 303 अनुवाक और 1975 मन्त्र (कण्डकाँण) हैं।

कृष्ण यजुर्वेद—

इसका सम्बन्ध वेद के ब्रह्म सम्प्रदाय से है और यह इस सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। कृष्णयजुर्वेद में मन्त्रों के अतिरिक्त यज्ञ की विधि का विवरण और उसके विषय में विचार विचार भी है। यजुर्वेद में गंध एवं ब्राह्मण का भौतिक रूप है। मन्त्र तथा ब्राह्मण (मध्यमक रूप) भाग का एकत्र विश्लेषण ही कृष्णयजुर्वेद के कृष्णत्व का कारण है। इसकी चार शाखाएं उपलब्ध हैं—
(1) तैतिरिय (2) सैनाधरणी (3) काठक (4) कपिश्ठल।

इनमें प्रधान शाखा तैतिरिय है। इस वेद के अनुष्ठानों की संख्या विशिष्ट भारत में अधिक है। यजुर्वेद में देवविनाद के ख़ाबू से सम्बन्धित कोई वर्ण नहीं होता।

अथवेद सहिता:

अथवेद का अर्थ है-अयैवों का वेद। अर्थात् अभिचार मन्त्रों से सम्बन्धित जाना। अज्ञात वंशीय अयवा ऋषि के द्वारा दुर्योग होने के कारण इस वेद का अथवेद के नाम से तथा अवरिज्जित्त से नाम से जाना जाता है। इसे भूमिक्षा वेद, भिष्मवेद, धन्वेद तथा ग्रहवेद भी कहा जाता है। इस वेद के देवता गोम, आचार्य तुम्ननुमुत्त तथा ज्ञातिविद् ब्रह्मा हैं। अथवेद में यज्ञपुत्र अशं कम होने के कारण इसे वेदव्रती की अपेक्षा कम महत्व दिया गया है।

अथवेद की शाखाएँ

महाभाष्यकार पत्रज्ञाति के अनुसार इस वेद की नौ शाखाएँ हैं 1. पिप्लाद, 2. सोद 3. स्रोद 4. शौनकिय 5. जाजल, 6. जाजल 7. घंघवेद, 8. देवर्जी और 9. चाराणवेद। इनमें देवपाल शाखा तथा शौनक शाखा ये दो शाखाएँ ही उपलब्ध है। सम्पूर्ण अथवेद में कुल 20 काण्ड, 34 प्राप्तिक, 111 अनुष्ठान, 739 सूक्त, तथा 5849 मन्त्र हैं। इनमें से लगभग 1200 मन्त्र अथवेद में भी मिलते हैं। आचार्य वाल्देव उपाध्याय के अनुसार-अथवेद में कुल 20 काण्ड, 731 सूक्त तथा 5987 मन्त्र हैं।

विषयवस्तु

अथवेदादि शाखाओं का विषय स्वर्गलोक की प्राप्ति इत्यादि पारलोकिक तथ्यों से सम्बन्ध विषयों का प्रतिपादन है; जबकि अथवेद का विषय वस्तु ऐसी है। इसी जीवन को सुखम्य तथा दुःखरहित बनाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है; उनकी सिद्धि के लिए नाना प्रकार के अनुष्ठानों का उपयोग इस वेद में किया गया है-“अहंकृतपुराणेषु यो रस सप्तधातुमय: तमभिकृत्य य चिकित्सा साल्लिःपासानं चिकित्सा।” अर्थात् शरीर सप्तधातुमय रन है,
उसकी चिकित्सा जिसमें है, वह अज्ञिःस्वरूप है। सहिता के प्रारूपित केवल काण्डों
का विशेष जाना, भार, उत्साहनिवाद से सम्बन्धित है। चौथवें काण्ड में विवाह,
आठवें काण्ड में श्राद्ध तथा बीसवें काण्ड में सोमयोग से सम्बन्धित मन्त्र दिये
गये हैं। उन्नीसवें काण्ड में राष्ट्रवृद्धि एवं आध्यात्मिक सूक्त हैं। अर्थविवेद की
विषय सामग्री को मुख्यतया आठ वर्गों में रखा जा सकता है- 

1. भैयज्ञसूक्त 2. आयुष्यसूक्त 3. पौष्टिकसूक्त 4. स्त्रीकर्मसूक्त
5. प्रायोगिकसूक्त 6. ब्राह्मणसूक्त 7. राजकर्मसूक्त 8. अभिवादनसूक्त।

इसके अतिरिक्त अर्थविवेद के रोहि सूक्त, दार्शनिक सूक्त, सूक्ति उत्पत्ति
सूक्त तथा पृथ्वी सूक्त इत्यादि भी उपलब्ध होते हैं।

इस प्रकार अर्थविवेद के विषय-विवेचन से यह पता चलता है कि इसमें
धर्म, अर्थ, काम तथा भोक रूप पुराणविश्व चलन के सभी अंगों का उल्लेख है।
शास्त्रीय दृष्टि से धर्म, दर्शन, तथा आध्यात्म और तत्त्वज्ञाना से सम्बन्ध भी
tतत्त्व इसमें विषयमान हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से जानती, अर्थवशस्त्र, धर्मवशस्त्र
और जान-विज्ञान का यह भाष्य है। साहित्यिक दृष्टि से रस, छन्द, अलंकार
tथा भाव और भाषा सीन्द्रिय इत्यादि भाव इसमें पूर्णतय विषयमान हैं। व्यावहारिक
उपन्यासिक दृष्टि से भावाश्चक प्रेरणा, गनन-चित्तन, कर्मचक्रोपेश, गद्यचार
और नीतिलक उपदेशों का यह अस्त विशाल भाष्य है। अतः अर्थविवेद को
वैदिक वाद में का इतरमोगा कहा जाता है। विषय की विविधता, स्थूलताप से
लेकर सुन्दरतम परिणत तथ्यों का प्रतिपादन तथा शास्त्रीयता के साथ-साथ
व्यावहारिकता का सम्भावना इस वेद की प्रमुख विशेषता है।

अर्थविवेद में देवर्षि नारद-

अर्थविवेद में देवर्षि नारद जीतातु, सर्वज्ञ तथा उपदेश ये रूप में दृष्टिकोण
होते हैं-

अर्थविवेद सहिता में देवर्षि नारद के प्रति अज्ञिःस्वरूप द्वारा कुछ मनों में
उपदेश भित्ता है। इस सहिता के प्रथम काण्ड में उन्नीसवें सूक्त में नातिक
व्यक्ति की निन्दा की गई है, जिसके द्वारा ब्राह्मण पीडित होता है। ब्राह्मण को
कष्ट देने से होने वाले पापों के बारे में वर्णन करते हुए यहाँ कहा गया है कि ब्राह्मण पर अल्पायार करने वाले व्यक्ति के बन उपवन में जाने पर वहाँ के पेड़ पीछे भी नष्ट होने लगते हैं। जो व्यक्ति ब्राह्मण के दक्षिणार्दि में प्राप्त हुए धन को जीत लेता है, वन के वृक्ष उसे अपनी छाया में बैठने से मना करते हैं—

“त वृक्ष अप सेधन्ति छायान्नो मोहणा इति।
यो ब्राह्मणर्य सदनभिष नारद सन्न्ति।”

यहाँ पर देवर्म नारद को मिल रहे उपवेश में ब्राह्मण विषाका का विरोध किया गया है। यहीं नारद ब्रह्म के अर्थ को इस प्रकार स्पत्त किया गया है— नर अर्थात सर्वांत परमत्त तथा द अर्थात् त्वै बला इस प्रकार नारद ब्रह्म का अर्थ हुआ ईश्वर का ज्ञान देने वाला व्यक्ति।

अन्य अर्थविद्या के ब्राह्मण काण्ड के चतुर्थ सूक्त में अश्विन ॠषि द्वारा देवर्म नारद के प्रति उपवेश में अभिमन्नित वश धेनु (वन्ध्य गाय) को ब्राह्मण के लिए दान देने का फल वर्धित है। इस गाय का वस्त्र को यहाँ होने पर भी देवताओं की गाय हो। करने वाले कारण दान के योग्य माना गया है। वश धेनु की रक्षा करने के लिए देवताओं की गाय को जिन कारणों को भोगणा पड़ता है, उसका वर्णन इस सूक्त में किया गया है। अश्विन ॠषि देवर्म नारद से कहते हैं कि यदि धेनु तीन वर्ष तक बाँधना वाली होकर विचर करती है तो उसे ‘वश’ के रूप में जानकर दान के लिए ब्राह्मण की स्वेच्छा करने चाहिए अर्थात् उसे ब्राह्मण को दान कर देना चाहिए—

“चतवेद नैवायण्याद्विजातम्या सती।
वशिः च विद्यानारद ब्राह्मणार्ल्लोध्या।”

अश्विन मन्त्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति वश गाय को विद्यान ब्राह्मण को न देकर उसका स्वयं उपभोग करता है; उसके लिए देवताओं सहित सारे पृथ्वी कप्त्रद हो जाती है, क्योंकि देवता भी इस गाय की कामना करते हैं।

1. अय्यर्— 5/19/9.
2. खंड— 12/4/16.
जिनके घर में वशा उत्पन्न हुई, देवताओं ने उनसे वशा को सांगा। इसकी महत्ता को देवसमुन्द्र मान्य राज ने भी जाना और वे देवों के साथ इस गाय के होंक कर देवलोक ले गये—

“देवा वशमयाचनू यसिन्नने अजायत।
तामेतां विद्यांनार्दः सह देवसङ्खोजत।”

आगे के गन्ध में कहा गया है कि वशा धैर्य देवों में हविवतू प्रिय होती है।
यज्ञ से उद्धृत्त होकर देवताओं ने जिन वशाओं को बनाया उनसे से नारद ने विस्तिर्न नामक वशा को सबसे अधिक भयानक स्वीकार किया—

“था वशा उदकल्पननू देवा यज्ञाद्वादुत्त्रा।
तासां विलिष्ठं भीमा— मुदाकुश्त नारदः।”

उस विस्तिर्ण गाय के विषय में देवता विचार करते हैं कि यह वशा है
अथवा अवशा; तब देवसमुन्द्र नारद कहते हैं— “एषा वशानं वशात्मा” अर्थात् यह
वशाओं में वर्गमेत्र है और अपने गुणों से सभी को वश करने चाहती है—

“ता देवा अभीमार्मस्त ब्रह्मायावतेन्त।
तामबीनार्द एषा वशानं वशतमेत।”

प्रस्तुत मनों में देवसमुन्द्र नारद के अपूर्व ज्ञान तथा सर्वसम्मत के दर्शन होते हैं।
देवतामण नारद से पूछते कि ऐसी कितनी उत्तम गुणों वाली वशाओं मनुष्यों को
बीच उत्पन्न हुई है तथा अभ्राह्मण को किसका उपभोग नहीं करना चाहिए—

“कर्ति न वशा नारद यास्तव वेद्य मनुष्यजः।
तासां पृच्छिष्टं विद्यायं कर्या नाशनीयावबाध्यण।”

अन्यत्र अथवा में देवसमुन्द्र नारद उपदेशों के रूप में दर्शनीय हैं। वे देवभुगु
बृहस्पति एवं देवताओं का उपदेश देते हुए कहते हैं कि अभ्राह्मण को विस्तिर्त का
एवं एक बार प्रस्तुत होने वाली वशा का उपभोग नहीं करना चाहिए। वशा की तीन

2. ऋक्य— 12/4/41.
3. वाही— 12/4/42.
4. ऋक्य— 12/4/43.
जातियाँ हैं—1. विलिपत, 2. सूतकशा, 3. वशा। इनको ब्राह्मण को प्रदान करना शुभ माना गया है। जो व्यः वात बनाने वाले लोग वशा को दान न करने के लिए कहते हैं वे दुःख अपनी मूर्खता से इतने के कोंध के द्वारा नष्ट हो जाते हैं। देवर्षि नारद के मुख से वशा धृतु के दान का महात्म्य सुनकर देवतागण देवर्षि को नमस्कार करते हैं—

“नमस्ते अस्तु नारदानुभु विदुषेच वशा।”

इस प्रकार अथवेद सहिता भें देवर्षि नारद अंड्रिय त्रिशिव से उपदेश प्राप्त करते हुए निजामु के रूप में, देवताओं को गाय का महात्म्य बताते हुए सर्वित्व के रूप में तथा देवगृह बूहित्ति एवं अन्य देवताओं को वशा धृतु के प्रकार तथा उसको दान करने का महात्म्य बताते हुए उपदेशक के रूप में इवर्गत है।

सामवेद सहिता :

चारों वेदों में सामवेद का अत्यधिक मौलिक स्थान है। जो पुरुष साम को जानता है, वही वेद के रहस्य के जानता है—‘सामवेद ये देवतिस से वेद तत्कस्म।’ गीता में भगवान् श्रीकृष्ण चारों वेदों में सामवेद को ही अज्ञात बताते हैं—‘वेदान्त सामवेदोहस्मा।’ अथवेद तथा अथवेद में भी सामवेद की अत्यधिक प्रशंसा की गई है। सामवेद सहिता उद्देश्य माध्यम श्रेणिकृत भी है। सामवेद सहिता उद्देश्य माध्यम नामक श्रेणिकृत की सहिता है। ‘साम’ शब्द का अर्थ है—‘देवों को प्रसन्न करने वाला गान।’

बृहस्पतिकोपनिषद् में साम शब्द की निश्चित इस प्रकार की गई है—‘सा च अम्बिवक्ति, तत्साम्भ सामतवम्। साम आकृति, तथा यह सब बनने अमो नाम स्वरो यथ वर्तते, तत्साम।’ अर्थात् ‘सा’ और ‘अम’ से मिलकर साम बना है।

‘सा’ का अर्थ है—‘क्रृत्री और ‘अम’ का अर्थ है—‘शब्द, क्रृत्री, गाथार आदि संगीत के सांत स्वर। इस प्रकार क्रिम्बेद की चौथाई जब सांत स्वरों से मिलती है,
तो ‘साम’ बनता है।

संक्षेप में, ‘साम’ का अर्थ है—ऋषियों का स्वरुपक ग्रेह पाठ। ‘ऐतरेय ब्राह्मण’ और ‘बृहदारण्यकोपनिषद्’ में ऋषियों और साम की इस चरित्रता को दाम्पत्—सम्बन्ध के द्वारा प्रकट किया गया है।

“अमोहमसिम सा त्वमु, सामहमसिम ऋषिक त्वमु।
तात्विक समभवाव, प्रजामभजनन्तावै॥”

यहाँ पति अपनी पत्नी का आवाहन करते हुए कहता है कि मैं साम रूप पति हूँ और तू ऋषिक रूप पत्नी हो। आओ, हम दोनों मिलकर प्रजा उत्पन्न करें।

जिन ऋषियों को साम अपना आधार बनाते हैं, उन ऋषियों को साम का ‘उत्पत्ति स्थान’ माना जाता है। सामवेद की मान सहिताओं के आधार पर ही भारतीय संगीतशास्त्र का विकास हुआ है।

सामवेद की शाखाएँ

‘सहस्त्रवर्षी सामवेदः’ वैविध्य पतन्त्रिका के इस कथन के अनुसार सामवेद की एक हजार शाखाएँ थीं। किन्तु आजकल सामवेद की केवल तीन ही शाखाएँ उपलब्ध होती हैं।

(1) कौशिकी (2) राणायणी (3) जैनियान

सामवेद का परिचय:

सामवेद में कुल 1875 सन्त्र हैं इसके मुख्य रूप से दो भाग हैं—

(1) पूर्वांशिक

(2) उत्तरांशिक।

‘आर्थिक’ शब्द का अर्थ है—ऋषियों सम्बन्धी। पूर्वांशिक के सन्त्रों को विषय के आधार पर चार पर्वों में विभाजित किया गया है—(1) आर्यन पर्व (2) अन्न पर्व (3) प्रथम पर्व (4) आर्यण पर्व। उत्तरांशिक में संवत्सर, दशरूण, सत्र, प्रायःशिला आदि यज्ञों को अनुष्ठानों का विधान है।
पूर्वार्थिक

इसमें छ प्रपाठक हैं। प्रपाठकों में अध्याय हैं और अध्यायों में संख्या है।
एक संख्या (दशानि) में या तो एक ही देवता से सम्बन्धित कहाँए हैं या एक ही
छन्द वाली कहाँए हैं। पूर्वार्थिक में प्रथम प्रपाठक से लेकर पन्थ प्रपाठक तक
संकलित कहाँए को ग्राम में गाया जाने के कारण एमलमन कहा जाता है तथा
छन्द प्रपाठक को अर्थात में गाया जाने के कारण आरामक पर्व या अन्तगमन
कहा जाता है। पूर्वार्थिक में समयोनि कहाँए की कुल संख्या 650 है।
उत्तरार्थिक

इसमें 9 प्रपाठक हैं। प्रथम से पन्थ प्रपाठक तक प्रत्येक में दो प्रपाठकार्थ
हैं और छन्द प्रपाठक से नवम तक प्रत्येक में तीन प्रपाठकार्थ हैं। इस प्रकार
उत्तरार्थिक में संकलित सामयोनि कहाँए की कुल संख्या 1225 है। संकेत में,
सामवेद सहित हमें संकलित सामयोनि कहाँए की संख्या इस प्रकार है—
पूर्वार्थिक—650, उत्तरार्थिक—1225 कुल संख्या= 1875
सामवेद में अधिकांश कहाँए उग्रवेद से ली गई हैं जिनकी संख्या 1504 है।
सामवेद की अभि 99 कहाँए हैं, साहित्यिक उत्कृष्ट से मूलप्रवाह न होते हुए भी
भारतीय संगीत की उत्कृष्ट से समवेद का बहुत मूल्य है।
परमप्राचीन प्राचीन नारद की सामवेदार्थ के रूप में जाना जाता है।

ब्राह्मण एवं उपनिषदों में नारद—

ब्राह्मण ग्रन्थ:

वैदिक सहितमें उग्रवेदवादी चारहितों के पश्चात् जिस सहिति की
रचना हुई है, वह ‘ब्राह्मण ग्रन्थ’ नाम से अभिहित है। इन ब्राह्मण ग्रन्थों का
रचना काल सामान्यतया 3000 ई.० पूर्व से 2000 ई.० पूर्व तक माना जाता है।
आचार्य सारण के अनुसार—जो पश्चिम से ग्रन्थ नहीं है, वे ब्राह्मण है तथा जो
ब्राह्मण नहीं है, वे ग्रन्थ हैं। शतचत ब्राह्मण के अनुसार ‘ब्रह्म देव मन्त्र’ से स्पष्ट
है कि वैदिक ग्रन्थों के व्याख्यानुष्ठान संपन्न करने के कारण ‘ब्राह्मण’ ऐसा
नामकरण किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्बन्ध ब्रह्मा से होने कारण इन्हें

1. शतचत ब्रा०—7/1/1/6.
ब्राह्मण कहते हैं। स्वरूप की दृष्टि से इन ब्राह्मण ग्रन्थों की दो विशेषताएँ इस प्रकार हैं- 
(1) ये ब्राह्मण ग्रन्थ कथ्य में लिखे गये हैं। 
(2) इनमें याज्ञिक कर्मकाण्ड के माध्यम से वेदमानों की व्याख्या की गई है। 
ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्यदृष्टि यह है कि जो व्यक्ति यज्ञ की विधि से 
परिचित है; उन्हें यज्ञ-सम्बन्धी कर्मकाण्ड की पवित्रता के महत्त्व का ज्ञान कराया 
जाए।

ब्राह्मण से अभिप्रायः 
ब्राह्मण शब्द से अपूर्त तद्विद्य प्रत्यय नाम करने पर ‘ब्राह्मण’ शब्द बनता है, 
जिसका अर्थ है—‘ब्रह्म का’ अर्थात् ब्रह्म से सम्बन्धित रचना आदि। यहाँ इसका 
अर्थ है—ब्रह्म से सम्बन्धित व्याख्या ग्रन्थ। 
ब्राह्मण शब्द के ब्रह्म से मन्त्र और यज्ञ दोनों अर्थ गृहीत हैं। अतः मन्त्र 
एवं यज्ञ दोनों की व्याख्या करने वाले ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाते हैं।

ब्राह्मणों की विषय-सामग्री 
ब्राह्मण ग्रन्थों की विषय-सामग्री को प्रमुख रूप से दो भागों में रखा जा 
सकता है। 
(1) विधि (2) अर्थवाद 
विधि में यज्ञ यान करने समय जिन नियमों का पालन होना चाहिए, उनका 
वर्णन किया गया है तथा अर्थवाद में निन्दा-प्रकाश्य, विनियोग, निश्चित, 
सत—महात्मा की शीलकथा, प्रतीकात्मकता तथा आर्थिकों का वर्णन मिलता है।

ब्राह्मणों की संख्या: 
आजकल उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थों की संख्या तथा नाम इस प्रकार हैं— 
खण्डवेद का 
(1) ऐतरेय ब्राह्मण 
(2) कौशिक ब्राह्मण (शाखापायन ब्राह्मण)
यजुर्वेद का
शुक्लयजुर्वेद का
(3) शतपथ ब्राह्यण
कृष्ण यजुर्वेद का
(4) तैतिरिय ब्राह्यण
सामवेद का
(5) ताण्ड्वय ब्राह्यण (पश्चविश ब्राह्यण)
(6) षड्विषं ब्राह्यण
(7) जैनिनीय ब्राह्यण
(8) गोपथ ब्राह्यण

उपयुक्त सभी ब्राह्यण ग्रन्थों में ‘शतपथ ब्राह्यण’ का महत्व सबसे अधिक है। साहित्यों में जितना महत्व ऋग्वेद का है, ब्राह्यण-ग्रन्थों में उतना ही महत्व ‘शतपथ ब्राह्यण’ का है। सम्पूर्ण वैदिक वाच्यवस्त्र में महत्व-क्रम की तृतीया से ऋग्वेद के बाद दूसरा स्थान शतपथ ब्राह्यण को ही दिया जाता है।

ब्राह्यण ग्रन्थों का महत्व:
ब्राह्यण-ग्रन्थों में प्राप्त वैदिक कर्मकाण्ड का भव्य चित्र, भारत के प्राचीन धर्म का अध्ययन करने वालों के लिए बहुत ही उपयोगी तथा संग्रहणीय है। ब्राह्यण-ग्रन्थों की ध्यातव्य वातावरण से है इस प्रकार है-
1. ब्राह्यण-ग्रन्थों में नाना श्र यानों और उनके विधि-विधानों का पूर्ण इतिहास मिलता है। तत्त्वज्ञान वर्तमान, वैज्ञानिक संरचना का रूप लिए हुए है।
2. ब्राह्यण-ग्रन्थों में हमें निश्चित के निर्वचनों का मूल आधार प्राप्त होता है।
3. बाद के पुराण-साहित्य में विकसित आदर्शावलों के गूढ़-भूमिका भी ये ब्राह्यण ग्रन्थ ही हैं।
4. कर्मं-सौगंध का प्रादर्शावली और विकास भी ब्राह्यण ग्रन्थों में ही हुआ है।
ऐतरेय ब्राह्मण में देवर्षि नारद—

क्रमेवद को ऐतरेय ब्राह्मण में देवर्षि नारद मार्गवर्षक तथा गुरु के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण की संतानपतिका के तृतीय अध्याय के प्रथम काण्ड में देवर्षि नारद राजा हरिचन्द्र (जिनकी सी पत्नियों थीं; किन्तु एक भी सत्तान न थी) की पुत्र विषयक पिता का निवारण करते हुए, उन्हें मार्गदर्शन देते हुए वर्णित है। इस्वाकुंवी वे धसु राजा के पुत्र राजपर्व हरिचन्द्र के घर नारद एवं राजपर्व ब्रह्मा आते हैं। राजा हरिचन्द्र अपनी व्यथा देवर्षि नारद को बताकर प्रश्न करते हैं कि जो देव एवं मनुष्य विषयक यादि विषयकाण्ड से युक्त हैं या जो पशु हो इस्वाधि विषयकाण्ड से रोखते हैं ये सभी पुत्र की इंतज़ा करते हैं तो उस पुत्र से पिता को जो लाभ प्राप्त होता है उसे कृपण बताएँ—

"यन्निम पुत्रमिर्त्तिः, ये विजानन्ति, ये च ना।
किंसितं पुत्रेण विन्दते, तन्म आच्छादन हरिसेति।"

देवर्षि नारद राजा हरिचन्द्र द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर गाथा्ओं द्वारा उत्तर देते हैं। देवर्षि नारद पुत्र प्रधानित से पिता को मिलने वाले पुप्पा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यदि पिता जीते देश सुपुर्ववेश उत्तपन पुत्र का मुख देख से तो वह अपने लोकिक एवं वैदिक रूप को अपने पुत्र से सम्पूर्ण रूप से स्पष्टता कर देता है। अर्थात् अपने रूप से मुख्त हो जाता है और अमरत्व को प्राप्त करता है—

"रूपमिर्त्विन सन्यासयमुत्तमं च गम्भीरत्।
पितां पुत्रसम्य कालम पश्यत्वद्धोगीवर्षो मुख्तम्।"

जिसके पुत्र नहीं हैं उसके सब कर्मों को निश्चित बताते हुए, देवर्षि कहते हैं कि जिसे पुत्र नहीं हैं उसके लिए इत्यादि जन्म जो कोई सुख नहीं है। पुत्रान् शोकालं होकर सुख अनुभव रूप से जिस गार्भ को प्राप्त करता है उस गार्भ का श्रेष्ठत्वों द्वारा गान किया जाता है—

1. ऐतरेय- 7/3/1/1.
2. वहीं- 7/3/1/2.
"एष पन्था उस्मान: सुशेषो यं पुत्रिण आकमन्ते विश्रोका!
त प्रश्निति पघशो वयासि च, तस्मात्ते मात्रापि मिधुनीभवन्ति।"

इस प्रकार देवशिं नारद दस गाथाओं द्वारा पुनर्लाभ वर्णन करके राजा हरिचन्द्र की पुत्री को और भी तीव्र कर देने हैं। राजा हरिचन्द्र देवशिं से कहते हैं कि वे वर्ण से प्रारम्भ करने ताकि भी पुत्रोपन्न हो और वह उस पुत्र से वर्ण का यज्ञ कर सके।

"वर्णं राजानुपदाय, पुत्रो मे जायतां तेन त्वा यज्ञ कदानि।"

देवशिं नारद के उपदेश से राजा हरिचन्द्र वर्णोपाध्याय करके रोहित नामक पुत्र को प्राप्त करता है। इस प्रकार ऐसेराज ब्राह्मण में देवशिं नारद राजा हरिचन्द्र के पुरोहित के रूप में वर्णन्याचे देश हुए उसका चिन्ता निवारण करते हुए वर्णित है।

अन्यत्र ऐसेराज ब्राह्मण में ही देवशिं नारद राजाओं के पुरोहित बन कर उनका अभिषेक करते हुए वर्णित हैं। सर्वप्रथम वे इस ब्राह्मण ग्रन्थ की संस्कृतमंडिका में हरिचन्द्र के दरबार में उसके पुरोहित बनकर वर्ण का प्राप्तिसिद्ध यज्ञ करते हैं। तत्पश्‌तां अन्तमंडिका को चतुर्थ हिमायाय के संतक खण्ड में अम्बामध्य नामक राजा का ऐन्न्राभिषेक करते हैं। उसके फलस्वरूप राजा अम्बामध्य सभी दिशाओं में समुद्रस्तर पर्यन्त पृथ्वी को जीतकर यज्ञ के योग्य अवसर से यज्ञ करता है अर्थात अवस्मेध यज्ञ करता है - "पुरुषे ते वा ऐन्न्रेण महाभिषेकं पर्वतनारावरामाभाष्ट्रमभिविचित्तुर् तस्मादाभिषेकः। समन्तं सर्वतः पृथ्वीयो जयन् परिपार्श्वनेन च भेद्येनेतो।"

इतिह ऐन्न्राभिषेक की प्रधाति दे पद्धति और नारद महाभिष राजा उपस्थित के पुत्र युधिष्ठिर पुत्रका अभिषेक करते हैं। उसके फलस्वरूप उपस्थित का पुत्र राजा युधिष्ठिर सभी दिशाओं में समुद्रस्तरपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर चारों ओर विचारण करके अवस्मेध यज्ञ करता है।

1. ऐन्न्रा- 7/3/11।
2. वसी- 8/4/7。
"एतुन ह वा ऐतिहासिक महाभिषेक वर्तमानादृश्यों यथागौरितमहाभिषेक वर्तमानादृश्यों: सम्पन्न सर्वत्र: पृथ्वी जयन् परिवाराध्यन्त च मेध्यन्ते।"

अन्यत्र तङ्भेवजो ऐतरेय भ्रामण की सघन पवित्रा में देवस्य नारद सहवेद के पुत्र सोमक को गृह के रूप में उसे ‘सोमविधा‘ प्रदान करते हुए परिलक्षित होते हैं। देवस्य नारद सोमक से कहते हैं कि सोम का पान करने वाला अभ्ययोग को प्राप्त करता है—

"पवीत्र हैव सोमविधा इति"

इसी सोमविधा को प्रथम सम्राज्य में कवच के पुत्र तुर नामक महर्षि ने परिलक्षित पुत्र जनमेजय को कहा और द्वितीय सम्राज्य में इस भक्ति को पर्वत एवं नारद क्रेश्वर ने सहवेद के पुत्र सोमक से कहा—

"एतमु हैव प्रचुः कावपेयो जनमेजययाव
पारिविधितयाव, एतमु हैव प्रोचुः पर्वतनारवो
सोमकाय साहदेवयाव, सहदेवयाव साहजयाय।"

इस प्रकार केवल तङ्भेवजो ऐतरेय भ्रामण में ही देवस्य नारद राजा हारिश्चन्द्र तथा अम्बाशद्र राजा के पुरोहित के रूप में उसका गार्दिशन करते हुए तथा सहवेद के पुत्र सोमक को सोमविधा का उपदेश देते हुए गृह के रूप में दृष्टिकोन होते हैं। अन्य किसी भी भ्रामण निधि में देवस्य नारद के त्वरित से समन्वित वर्णन प्राप्त नहीं होता।

आर्यन्य ग्रन्थ

चर्चनाऊपर की उपरोक्त से, वैदिक साहित्य में सहिताओं और भ्रामण ग्रन्थों के बाद आर्यन्यकों का स्थान है। व्याख्या: ये आर्यन्यक भ्रामण ग्रन्थों के ही पूर्वक हैं। आर्यन्यकों का प्रादेशिक भाव भ्रामण है तथा अन्तिम भाग उपनिषद् हैं।

आरण्यकों का स्वरूप

अरण्य भवमृ आरण्यकमृ अर्थात् अरण्य में होने वाला जान आरण्यक कहलाता है। आरण्यक-ग्रन्थों में मुनियों एवं वानप्रस्थियों के लिए उपयुक्त, यज्ञ आदि के विधान के साथ यह ब्राह्म आदि तत्त्वों का विवेचन भी हुआ है। ऐतरेि ब्राह्मण के भाष्य में आचार्य साप्तां ने ‘आरण्यक’ संज्ञा पर विचार करते हुए लिखा है--

“अरण्य एवं पायतः आरण्यक मित्तायें।”

अर्थात् अरण्य में पाठ किए जाने से ही आरण्यक कहलाते हैं। आरण्यकों में कर्मकाण्ड और जानकाण्ड का समन्वय हुआ है। इस दृष्टि से आरण्यक सन्त्राकालीन स्त्राणां हैं।

आरण्यक-ग्रन्थः

साधारण विभागों के अनुसार जितनी सहिताएँ हैं, उतने ही ब्राह्मण ग्रन्थ और उतने ही आरण्यक ग्रन्थ भी होने चाहिए। किन्तु आजकल आठ ही आरण्यक उपलब्ध होते हैं, जो इस प्रकार हैं--

ऋग्वेद कः 1. ऐतरेियारण्यक

2. शाख्यायन आरण्यक

कृष्णायजुवेद कः 3. तैत्तिरिय आरण्यक

4. भैशायणी आरण्यक

शुक्लायजुवेद कः 5. माध्यमिन बृहदारण्यक

6. काणव बृहदारण्यक

सामवेद कः 7. तवलकार आरण्यक

8. चान्दीय आरण्यक

आरण्यक ग्रन्थों में देवदि नारद के स्वरूप से सम्बन्धित कोई विषय सामग्री उपलब्ध नहीं होती।
उपनिषद् यन्त्रः

उपनिषद्, आरण्यकों के ही विशेष अंग हैं। आरण्यकों और उपनिषदों में ज्ञान का उत्पादक विकास दृष्टिगोचर होता है। स्थूल से सूक्ष्म की ओर उठने की जो प्रक्रिया ब्रह्मणों में शुरू थी, आरण्यकों में यह थाने: शान्ति प्रकट हुई और उपनिषदों में वही सूक्ष्मता के चरम विकास तक पहुँची हुई दिखाई पड़ती है। वैदिक साहित्य में उपनिषदों के महत्त्व को ऋषिदेव के महत्त्व के ही तुल्य नामा जाता है। वैदिक धर्म की प्रथान्तरी में तथा उपनिषदों का स्थान ही सम्मिलित है। भारत में जिसने भी वर्तमान का प्रदुषण हुआ है, उनमें से प्रायः सभी का आधार ये उपनिषद् यन्त्र ही है। भारतीय संस्कृति इन्हीं पर आधारित है। इसी से मानने वाले मुलायमशक ‘दाराकिवकोह’ तथा विदेशी विद्वान जर्मन दार्शनिक ‘शोषेनहार’ ने उपनिषदों की भूरी-भूरी प्रवृत्ति की है। व्यूम्बकल्द के शब्दों में-“हिन्दू-धिन्तन का कोई भी रूप ऐसा नहीं है, जो धर्म भी नहीं, जो उपनिषदों से निस्तुत न हो।”

शाबित व्युत्पत्ति की दृष्टि से उपनिषद् शब्द उप और नि उपसर्ग पूर्वक ‘सद्द्वृ’ ध्रुव से बनाया गया है। ‘सद्द्वृ’ ध्रुव का प्रयोग तीन अर्थों में होता है—

1. विशारण अर्थात् नाश होना,
2. गति अर्थात् प्रत्यक्ष करना या जानना
3. अवसादन अर्थात् शिथिल होना

इस प्रकार उपनिषद् से यहीं अभिप्राय है कि इनके अध्ययन से अविचार का नाश होता है, इनके अध्ययन से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है और सांसारिक दुःख शिथिल होते है। उपनिषद् का सुख्य अभिप्राय तो ‘ब्रह्मज्ञान’ से है।

उपनिषद् शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार उप और नि उपसर्ग लगाकर ‘सद्व’ (बैठना) ध्रुव से उपनिषद् शब्द बनता है। जिसका अर्थ है गुड़ के समीप बैठना तथा उनके समीप बैठकर रहस्यमय मन्त्र को प्राप्त करना। इस प्रकार ‘उपनिषद्’ वे ग्रन्थ हैं जिसमें ब्रह्म सम्बन्धी विद्या का कथन है तथा उस विद्या

1. द सिलीजन ऑफ द वेद, पृष्ठ 51.
को पाने के लिए गुरु के अतिनिकट रहना आवश्यक है। उपनिषददेव शब्द का अर्थ रहस्य अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है 'इति रहस्यम' और 'इति उपनिषद्'। इसी लिए उपनिषद्देव को गुरुपानन भी कहा जाता है। "गुरु आदेश" तथा "पदम गुढ़म्।" ।

उपनिषदों की संख्या :

सुश्रुशाकोपनिषद के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 है। परन्तु अष्टोत्तरथिति. उपनिषद ही प्रमुख गाने जाते हैं—

ऋग्वेद से सम्बन्धित—
1. ऐतरेय
2. कौशिकी

कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित—
3. तैतिरिय
4. कठ
5. वेतावर्तर
6. मैत्री

शुक्लयजुर्वेद से सम्बन्धित—
7. बुधदार्षिक
8. ईश

सामवेद से सम्बन्धित—
9. छायोप्य
10. केन

अथर्ववेद से सम्बन्धित—
11. मुण्डक
12. माणुक्य
13. प्रश्न

1. छठौटो— 3/5/2.
2. कठौटो— 3/17.
आचार्य शंकर ने जिन दस उपनिषदों पर अपना भाष्य लिखा है उनके
नाम हैं-

“ईश - कोन - कठ - प्रश्न - मुण्डक - माण्डक - तितिति:।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं च बृहदारण्यकं द्वारं।”’

ब्रह्मसूत्र में शाश्वताचार्य ने इन दस उपनिषदों के अतिरिक्त कोषीतकी,
श्वेताश्व, मैत्रायणी तथा महानारायणी उपनिषदों को भी प्रमाणित माना है।
उपनिषदों में ब्रह्म, आत्मा, प्राण, जीव-जगत, तथा पुनर्जन्म इत्यादि दार्शनिक
विषयों का विवेचन हुआ है।

छान्दोग्योपनिषद में नारद—

छान्दोग्योपनिषद के सप्तम अध्याय में देवर्षि नारद की सर्वविद्याविवाहर
होने की पुष्टि होती है। जब सनत्कुमार देवर्षि नारद को उपदेश देने से पूर्व अपना
सम्पूर्ण मान उनके समक्ष रखने का आदेश देते हैं तब देवर्षि नारद अपने जिस
सर्वविद्या मान व्यापकता के दर्शन करवाते हैं वह इस प्रकार है— देवर्षि नारद
वह कहते हैं कि उन्हें क्रष्णेद, गजुर्वेद, सामवेद, अथवावेद कपड़स्थ हैं। इनके
अतिरिक्त पृथ्वी पुराण रूप पश्चम वेद, व्याकरण, श्रावकल्प, गणित,
उत्पादन, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या,
क्षत्रियविद्या, नरसिधिविद्या (गायक मन्त्र) और देवजनविद्या नृप्य-संगीत हिमादि सब
कुछ जानते हैं।

“क्रष्णेदं भगवोध्येष्मिव यजुर्वेदं सामवेदमध्यर्थवर्णं सुतुथ्मितोस्पुराणं पश्चमं
वेदानं वेदं पिन्यं राजिं देवं निधिः वाकोवाक्यमेकावनं देवविद्यं ब्रह्मविद्यं
भूतविद्यं क्षत्रियविद्यं नरसिधिविद्यं संपरं देवजनविद्यं मेतातज्ञावोध्येमिः।’’

इन सब विद्याओं के ज्ञान होने पर भी देवर्षि नारद आत्मविद्या न होने के
कारण स्वयं को शून्य मानते हैं और सनत्कुमार से आत्मविद्या का उपदेश प्राप्त
करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। छान्दोग्योपनिषद के सप्तम अध्याय में ही देवर्षि

1. मुक्तितः०
2. छान्दो - 7/1/2.
नारद सन्तपुर्ण के सिद्ध के रूप में दृष्टिगत होते हैं। प्रस्तुत उपनिषद में कहा गया है कि अपने सभी कर्तव्य पूर्ण कर देने के बाद भी तथा सर्वरोधका निर्माण होने के पश्चात् भी देवर्षि नारद को अनाम्न होने के कारण शोक होता है। तथा वे उत्तम कुल, विद्या, आचार और नाना प्रकार के साधनों की सामर्थ्य रूप सम्पत्ति वाले होने पर भी अवैमान को त्याग कर श्रेय साधन की प्राप्ति के लिए एक साधारण पुरुष को समान सन्तकुमार को समीप जाकर कहते हैं—
“ॐ अर्धाहे भगव इति रोपसाद सन्तकुमारं नारदस्तं होवाच। यहेकथ तेन मोपसीद तत्स्त ऊद्ध्र्थं चतुर्मामीति से होवाच।”

देवर्षि नारद द्वारा सन्तकुमार से आत्मविद्या विषयक उपदेश सुनने की प्रकाशा देखकर सन्तकुमार उन्हें अपना पूर्व का सम्पूर्ण ज्ञान अपने समलक्ष बतलाने को कहते हैं, तब देवर्षि नारद अपना सम्पूर्ण ज्ञान अर्थात् वचन-पुजन-अवयव इत्यादि, पुरुष्य, भाषार्, गणित, उपासनादि, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देशविद्या, ब्रह्मविद्या, नृत्य-संगीत इत्यादि को बारे में बताते हैं। देवर्षि नारद शोक प्रकट करते हुए गुडैय सन्तकुमार से कहते हैं कि मैं केवल सन्तकुमार आत्मवेद्व नहीं किंतु आत्मवेद्व शोक को पार कर लेता है—
“तत्तित शोकमात्मविलुप्तम्”

सन्तकुमार कहते हैं तुमने यह जो कुछ भी अध्ययन किया है अध्ययन से उसके अर्थ का ज्ञान भी उपलब्ध होता है; किंतु श्रुति कहती है कि विकार वाणी पर अवलंबित केवल नामभाषा है—
“वाचार्यमण्ड्र विकारो नाम ध्रुभम्”

सन्तकुमार ऋषिवेद इत्यादि सम्पूर्ण विषयों को नाम की संख्या देकर देवर्षि को नाम की उपासना करने को कहते हैं। देवर्षि नारद जब पूछते हैं कि नाम से बढ़कर कौन है तो सन्तकुमार वाणी (वाक्) को नाम से बढ़कर बताते हैं। किंतु वाक् ही चतुर्वेद इत्यादि पुरुष इत्यादि को विज्ञापित करती है। यदि वाणी न होती

1. ग्न्व्रृ - 7/1/1.
2. किते-7/1/2.
3. किते - 7/1/4.

43
तो न धर्म का, न अधर्म का ज्ञान होता, न सत्य, न असत्य, न साधु, न असाधु का ही ज्ञान होता। वाणी ही इन सबका ज्ञान करती है, इसलिए वे वाणी की उपासना करने के लिए कहते है।

"वाणीतस्वय विज्ञाप्यति वाचमुपास्वेति।"

जो वाणी को ब्रह्म ज्ञान कर उपासना करता है वह जानें तक वाणी की गति है वहाँ तक स्वेच्छा गति हो जाता है। वाणी के श्रेष्ठ कौन है? इस प्रकार देवर्णं धारा पूछे जाने पर सन्तप्नामर सन को वाणी से श्रेष्ठ बताते है तथा वाक् और नाम का अन्तर्भाव मन में बताते हैं। क्योंकि जब प्राणी मन से शुभ कर्म करने का संघ करता है तभी वह उस कार्य को करने में प्रवृत्त होता है। मन ही आत्मा है जो मन को ब्रह्म जानकर उसकी उपासना करता है वह तर जाता है।

"संकल्पो वाव मनसो भूयान्नवा वै संकल्पयते अथ मनस्तत्वय वामार्णयति तामु नामार्णयति नामिन मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्मणि।"

नारद द्वारा सन्तप्नामर से संकल्प से भी अधिक श्रेष्ठ वस्तु के विषय में पूछे जाने पर वे संकल्प से अधिक विचार की श्रेष्ठ बताते हैं; क्योंकि जिस समय पुरुष ज्ञानान्वयन होता है तभी वह संकल्प करता है, फिर मनन इत्यादि करता है।

1. छठौ 7/2/1.
2. बसी 7/4/1.
अभ्रोता, अकर्षण और अविवाह हो जाता है। इसलिए अन्न श्रेष्ठ है। अन्न की अपेक्षा जल श्रेष्ठ है; क्योंकि जब तक सुपृणि नहीं होगी तब तक अन्न भी नहीं होगा। जल की अपेक्षा तेज प्रधान है; तेज से ही सम्पूर्ण जग प्रकाशमान है। तेज की अपेक्षा आकाश, आकाश की अपेक्षा स्मृति तथा प्रति स्मृति होने पर ही आपत्ति हुए जान का कुछ लाभ होता है, अन्यथा वह ध्येय हो जाता है। स्मृति के ज्ञात आशा की महत्ता बताई गई है, आशा से प्राणों को बढ़कर बनाया गया है; क्योंकि जिस प्रकार रथ चक्र की नामों में अरो सम्बन्ध हैं, उसी प्रकार इस प्राण में समर्थ जगत सम्बन्ध है। प्राण है जो जान है प्राण निकल जाने पर सब शून्य हो जाता है।

“प्राणो या आशाय भूमियत्वं वा अरा नाभो समर्थिता एवमुमित्तमा प्राणो सर्व समर्थितम्।”

देवर्थि नारद सन्तकुमार से जब सबसे उत्तम अपने आत्मा प्राण को ही स्थानत्स सुनते हैं तो उससे पहले और कुछ भी नहीं है, यह जानते हुए शान्त हो जाते हैं। फिर देवर्थि नारद सत्त्व को जानने की जिम्मेदारी प्रकट करते हैं। सन्तकुमार कहते हैं जिस समय मनुष्य सत्त्व को जानता है तभी वह सत्त्व बोलता है, बिना जानने सत्त्व नहीं बोला जा सकता। विक्रम प्रथा से जानने वाला ही सत्त्व का कथन कर सकता है; अतः विज्ञान को वित्तरपार रूप से जानना चाहिए—

“विज्ञानं भगवो विज्ञातस्”

विज्ञान के साथ सत्त्त्व को, श्रद्धा, निदेश, कृतिक, शुभता तथा भूमि के स्वरूप को भी जानना चाहिए; क्योंकि भूमि अर्थात् आत्मा स्वरूप विज्ञानमान है। इस प्रकार विज्ञान अन्तर्गत आत्मा स्वरूप विज्ञानमान है। इस प्रकार के विज्ञान के लिए आत्मा से प्राण, आशा, सम्पति, आकाश, तेज, जल, अन्न, बल, आत्मा से ही विज्ञान, ध्यान, नाम, सत्त्व, वर्ण इत्यादि आत्मा से ही सब हो जाता है।

1. छोटू- 7/15/1.
2. वही- 7/17/1.
3. वही- विज्ञान शब्द का अर्थ यहाँ वाल्मिक जान है।
सन्तकुलामे देवर्षि से अन्त में कहते हैं कि विज्ञान न तो गृह्यु को देखता है, न रोग को न दुखत्व को। क्योंकि वह वस्त्र आलंपण ही देखता है।

“न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां
सार्व ह पश्यः पश्यति सर्वापाने शार्वश इति।”

“आहारशुद्धि सत्त्वशुद्धि: सत्त्वशुद्धि धुखा स्मृति: स्मृतिलम्भे सर्वस्मिनोऽनम्”¹

आहारशुद्धि से पर अन्त:वरण यानी सत्त्व की शुद्ध होती है और अन्त:वरण निर्मल होने पर भूमाल्यम में धुख अर्थात् अविष्किर्मण स्मृति की प्राप्ति होती है। स्मृति लब्ध होने पर अद्यतन की ग्रन्थिव अन्त:वरण से विक्रयान्त (विनाश) होता है। ज्ञान वैदिक और अध्ययन रूप से देवर्षि नाराय के कश्य (अन्त:वरण) का क्षेलन गर्वन अर्थात् विनाश होकर उन्हें सन्तकुलाम से आलंपण की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार केवल छान्दोपनिषद् में ही देवर्षि नाराय के स्वप्न से सम्बन्धित वर्णन प्राप्त होता है; अन्य किसी भी उपनिषद् ग्रंथ में देवर्षि नाराय से सम्बन्धित विषय सामग्री उपलब्ध नहीं होती। छान्दोपनिषद् में देवर्षि नाराय विज्ञान विश्व के रूप में सन्तकुलाम से आलंपण विषयक प्राप्त करके उनसे आलंपण प्राप्त करते हैं।

वेदाङ्ग साहित्य में देवर्षि नाराय-

वेदाङ्ग साहित्य:

वैदिक साहित्य का यह विभाग वेदों से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के कारण ही वेदाङ्ग कहलाता है। ग्रन्थ-सहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थों को वेद कहा जाता है और उनके अध्ययन में सहायक शास्त्र को वेदाङ्ग कहते हैं। वेद का मूल पाठ अत्यन्त पवित्र है, उसमें परिवर्तन न हो, उच्चारण शुद्ध बना रहे, और वेद-ग्रन्थों के अर्थ का ज्ञान भी ठीक-ठीक हो जाए। इसके लिए

1. छान्दो- 7/26/2.
2. वेदाङ्ग- 7/26/3.

46
वेदाञ्ज-साहित्य का आविर्भाव हुआ है। वेदाञ्ज की संख्या छ. है- (1) शिशा, (2) निष्क, (3) कल्प, (4) व्याकरण, (5) ज्योतिष, (6) छन्द।

वेदाञ्ज-साहित्य में सूत्र शैली प्रयुक्त होने के कारण इसे ‘सूत्र-साहित्य’ भी कहा जाता है। पाषवायत्व विद्वान् कोजिन (Kaegi) का कथन है - "The third and youngest stage of Vedic Literature is the Vedang, also called Sutra."!

अर्थात् वैदिक साहित्य में सबसे बाद में होने वाली रचनाएँ वेदाञ्ज हैं, उसे सूत्र भी कहते हैं। रचनाक्रम की तृतीय से चौथी तीसरा स्थान है। इन रचनाओं को वेदाञ्ज इसलिए कहा जाता है, क्योंकि ये वेद के अध्ययन में पूर्णता से सहायक हैं।

उदाहरण के लिए :-

1. वेद-सन्निद्धों के शुद्ध-पाठ में ‘शिशा’ नामक वेदाञ्ज सहायता करता है।

2. वेद-सन्निद्धों के कर्मकाण्डिय और यज्ञीय अनुष्ठान के ज्ञान के लिए कल्प नामक वेदाञ्ज का महत्त्व है।

3. वेद-सन्निद्धों में प्रयुक्त पदों के शुद्ध स्वरूप (प्रकृति-प्रत्यय) के ज्ञान के व्याकरण वेदाञ्ज उपयोगी है।

4. वेद-सन्निद्धों में आये वैदिक पदों (शब्दों) के अर्थ का ज्ञान करने में ‘निष्क’ नामक वेदाञ्ज सहायक है।

5. वैदिक सन्निद्धों में प्रयुक्त छन्दों के ज्ञान के लिए छन्दों के वेदाञ्ज का महत्त्व है तथा

6. यज्ञ और अनुष्ठानादि विभिन्न क्रियाओं के लिए उपयुक्त काल और मूर्त्ति का ज्ञान करने में ज्योतिष वेदाञ्ज सहायता करता है।

वेदाञ्ज को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :–

1. कर्मकाण्ड-सम्बन्धी; जैसे कल्प वेदाञ्ज और ज्योतिष वेदाञ्ज।

2. वेदपाठ-सम्बन्धी; जैसे शिशा वेदाञ्ज, व्याकरण, निष्क का ज्ञान तथा छन्दों वेदाञ्ज।

1. Life in Ancient India.
शिक्षा वेदाङ्गः:

वेदाङ्गोऽन, शिक्षा वेदाङ्गः का स्थान गहरायुक्तपूर्ण है. इस वेदाङ्गः की तुलना पुरुष के अलावा से करते हुए, इसे वेदविस गुप्त की प्रागतिश्रेण्य (नातिका) कहा गया है- "शिक्षा धारण तु वेदाङ्गः"। वेदीं के भाष्यकार आचार्य सामय ने अपने ग्रन्थ ‘अर्थ-वेद-भाष्य भूमिका’ में शिक्षा की परिभाषा इस प्रकार दी है- "स्वर्गवाणिज्यकारण प्रकाराऽथ क्षुद्र दिशयते सा शिक्षा।" २

अर्थांतु जिस वेद वेदाङ्गः में स्वर और वर्णादि के उच्चारण की रूपरेखा का उपर्युक्त विषय जता है, वह शिक्षा है। तैत्तिरीयोपनिषदः में शिक्षा को और भी अधिक स्पष्ट किया गया है- "शिक्षाः ध्वनियांत्याम्: - वर्णः, स्वरः, मात्रा, बलम्, साम, संवादः, इत्युपरोऽश्रृङ्खलः शिक्षायाम्:।" ३

इससे मात्र होता है कि शिक्षा वेदाङ्गः में उच्चारण-सम्बन्धी इन चार विषयों का विवेचन होता है-

1. वर्णः - अर्थांतु अः, इः, उः, कः, खः, गः आदि वर्णों का उच्चारण।
2. स्वरः - वेदांत में प्रणुक्त, उवाचा, अनुदात्त और स्वरित का उच्चारण।
3. मात्रा - अर्थांतु हृत्त, दीर्घ और पल्लुच्च का उच्चारण।
4. बलम् - स्थान और प्रयत्न के अनुसार वर्णों का उच्चारण।
5. साम - अर्थांतु दोषप्रतिष्ठ और माध्यम आदि गुण सहित उच्चारण।
6. सत्ताध्ययन—अर्थांतु सहितं (सन्धि) के नियमों के अनुसार उच्चारण।

शिक्षा वेदाङ्गः में तीन प्रकार की रचनाएँ परिगमित होती हैं-

(1) प्रातिलिप्य-ग्रन्थः, (2) शिक्षा-ग्रन्थः और (3) शिक्षा-सूत्रः।

शिक्षा ग्रन्थः - प्रातिलिप्य ग्रन्थों के आधार पर शिक्षा-ग्रन्थों की रचना कारिकाओं में हुई है।

1. पारशिकः
2. अर्थांतुपूर्वः
3. तैत्तिरीयाः - १/१.
नारदीय शिक्षा में नारदः

सुलय शिक्षा ग्रन्थों में नारदीय शिक्षा भी एक है। सामाजिक अर्थात् गानवेद के आचार्य के रूप में माननीय देवर्षि नारद के द्वारा उपवेदनारदीय शिक्षा ग्रन्थ संगीत शास्त्र के लिए एक अपूर्व देन है। वीणा बजाकर हरिकीर्तन करने वाले देवर्षि नारद, भारतीय जन मानस में गन्धर्व-विद्या के दैवी प्रतिक के रूप में जाने जाते हैं। शिक्षा ग्रन्थों में नारदीय शिक्षा का स्थान प्राचीनतम है। इस ग्रन्थ में संगीत की प्रारंभिक अवस्था का वर्णन है। इस शास्त्र में देवर्षि नारद गन्धार ग्राम के उपवेदनारद हैं। तथा आरंभिक नाद्य प्रयोग में गन्धार ग्राम का कार्य देवर्षि नारद को ही सौंपा गया। ये ‘निगीत’ अथवा ‘बहिगीत’ के अविकार हैं। नारद के अनुसार ग्राममारों का प्रयोग लोकिक विनोद के लिए न होकर, क्रेयत स्तुति या यज्ञ में होना चाहिए।

नारदीय शिक्षा ग्रन्थ के अनुसार देवर्षि नारद की श्रीणा का नाम ‘महादी’ बताया गया है; जिसमें इक्कीस तार होते थे, जिन पर तीनों सताक (सन्तर, मध्य तथा तार) भिते रहते थे। इसमें तीनों ग्राम तथा इक्कीस मूर्तार्ध भती भीति स्पष्ट होती थी। यही नारदीय श्रीणा बाद में ‘मस्तकोकिल’ के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस शास्त्र में देवर्षि नारद को देव गन्धर्व के साथ-साथ भू गन्धर्व की उपाधि से भी विभूषित किया गया है।

देवर्षि नारद द्वारा उपवेदनारदीय शिक्षा, संगीत मकरंद तथा पश्चमार सहिता नामक ग्रन्थ भारतीय शास्त्रीय संगीत के लिए अमूल्य रत्न हैं।

कल्प वेदाजः

छः वेदाज्ञायें में ‘कल्प’ नामक वेदाजः का अपना विशिष्ट स्थान है। इसका कारण यह है कि वेद की प्रत्येक शाखा के अपने ब्राह्मण और आर्यक ग्रन्थों की भौतिक ही सभी शाखाओं के पूर्व-पूर्व कल्पसूत्र भी उपलब्ध होते हैं। इन्हें सहिताओं और ब्राह्मणों की विविध बिधाओं का सार ग्रन्थ कहा जा सकता है। कल्प सूत्र चार प्रकार के हैं- (1) श्रौतसूत्र, (2) धर्मसूत्र, (3) मृद्धासूत्र, (4) शाल्वसूत्र।
धर्मसूत्रों में नारदः

धर्मसूत्र- यहूँ 'धर्म' शब्द से तात्पर्य है- कर्मचार्य और प्रथा। इन धर्मसूत्रों में व्यक्ति के सामाजिक आचार-व्यवहार और सामाजिक जीवन का विवेचन होता है। धर्मसूत्रों में विवाहोपरांत उत्पन्न बल्लाणों की सम्पति के अधिकार का विवेचन होता है। इसमें गृहस्थ व्यक्ति के सामान्य, नित्य और नैतिकिक कर्मों के साथ ही, प्राप्तिविक आदि से सम्बन्धित सामग्री भी मिलती है। बाद में, ये ही धर्मसूत्र हिन्दूओं के विधि-साहित्य अर्थात् न्याय साहित्य के रूप में परिभाषित हुए हैं।

वेदाङ्ग साहित्य को कल्पसूत्र में धर्मसूत्रों के अन्तर्गत नारद-भक्ति-सूत्र तथा नारद सूत्र-ग्रन्थ की गणना की जाती है, इन दोनों धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में देवर्षि नारद का उपदेश किया गया है जिसका वर्णन निम्नलिखित प्रवर्तक से किया गया है :-

नारद-भक्ति-सूत्रः

प्रस्तुत ग्रन्थ में देवर्षि नारद उपदेशक के रूप में वर्णित हैं। इसमें नारद ने चौराही सूत्रों में भक्ति तर्क की व्याख्या की है जिसमें भक्ति के लक्षण तथा उदाहरण, साधन, महंगा, स्वरूप, भक्ति के सहायक, भक्ति की महत्ता एवं भक्ति के प्रकरणों का वर्णन किया है। समस्त शास्त्रों के सुप्रगौंित तथा समस्त तत्त्वों के आधा और व्यक्तित्व होकर भी देवर्षि नारद भगवान् की भक्ति का ही उपदेश करते हैं। वे वाद्यकित्ते, व्यास, शुकदेव, प्राध्यापक, ध्रुव आदि महत्त्वादि को भगवद्वहनित्व में लगाते हैं तथा स्वयं भी वीणा हार्य में लेकर लोक-लोकांतर में घूमते हुए सदैव निर्माण-पत्रिक भगवान् के पति को भक्ति करते हैं, सारे विश्व के नर-नारियों को पवित्र और भगवानसूत्री करते हैं। देवर्षि नारद भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए इस शास्त्र में कहते हैं :-

“सा तत्सत्सत्सुपरमेदुरुपुरुषः, अमृतसल्लरुपरुषः च यल्लध्वा संचितो भवति, अमृतो भवति, तृष्टो भवति। यत्प्राय न किलिच्चान्तुति न
शोचति न हैन्सति न रमते नोल्साही भवति। यज्ञाल्या मतो भवति स्तव्भो भवति, आत्मारामो भवति, सा भवित।'"

अर्थात् वह भवित ईश्वर के प्रति परम प्रेमस्म आगो, अमृतस्वरूप भी है। जिसको प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो कर अमर एवं तुलन हो जाता है। जिसको पा लेने से फिर वह किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता, न शोक करता है, न देश करता है, न किसी वस्तु में आसक्त होता और न विषयें को प्राप्त करके प्रसन्न होता है। जिसे जानकर मनुष्य शांत हो जाता है, आत्माराम बन जाता है। इसके पश्चात् नारद प्रेम में अनन्यता का वर्णन करते हुए कहते हैं:- "अन्यांश्रयाणां त्वामोलननयता।" अर्थात् भगवान् को छोड़कर दूसरे आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है, भवित के लक्षण बताते हुए देवर्षि नारद कहते हैं:

"तद्वपिसारिकारिता तत्वस्मरो परम व्याकुलतेति।"² अर्थात् अपने सब कर्मों को भगवान् के अर्पण करना और भगवान् का धौड़ सा भी विस्मरण होने में परम व्याकुलता होना ही भवित है। इसका उदाहरण देते हुए देवर्षि नारद ब्रज की गोपियों की भवित को उठाक बताते हैं:- "थथा ब्रज्मोल्पिकानाम।" भवित के साधन बताते हुए देवर्षि नारद विषयत्वां और संगत्यांकण करने को कहते हैं। लोक में भी भगवद्गुण श्रवण और कीर्तन से भवित साधन सम्पन्न होता है। भगवत्कुपा अथवा महापुरुषों की कुपा से भी भवित की प्राप्ति होती है। किन्तु महापुरुषों के संग को हुल्ले, अगम्य और अनोच बताया गया है तथा भगवान् की कुपा से ही महापुरुषों की संगति मिलती है ऐसा कहा गया है:- "लोकोपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनानां। सुखवत्सस्तु महाकुपेवव भगवत्कुपालेशस्तु। महत्वस्तुस्तु दुर्लभोजगमम्रोमोधावह। लभ्यतेब्रि तत्वकुपेव।"³

1. नानको १० - सू० / 1-6.
2. यही - सू० / 19.
3. यही - सू० / 21.
4. यही - सू० / 37-40.

51
इसके पश्चात् कुसज्जति को भक्ति गार्ग की बड़ी बाधा बताते हुए नारद दुसङ्ग का त्याग करने के लिए कहते हैं; क्योंकि वह काम, क्रोध, मोह, स्वृतिभ्रष्ट एवं सर्वनाश का कारण है। अतः साधक, माया का पर करने वाले पुरुष का लक्षण बताते हुए देवर्षि कहते हैं कि जो रसुज्ज का त्याग करता है, दहानुभावो की सेवा करता है तथा मथतारहित होता है वही दुस्तर नारद माया के पार कर लाक्षणित है।

``
'प्रेम निरंतरर्व्व र्वणो भक्ति र्वनिर्माने भवितन कर्मकल का त्याग करता है, जो निर्जित स्थान में निवास करते हुए लोकिक बनतनों को तोड़कर, तीनों गुणों से पार हो जाता है, वह दुस्तर नारद माया को पर हो जाता है। यह स्थान भी तत्काल है तथा लोकों को भी तत्काल है - "स स्तरति स लोकांतरस्त्रित।"'  
``

देवर्षि नारद प्रेमा भक्ति और गौणी भक्ति का लक्षण बताने के पश्चात्, भक्ति की सुलभता और महत्ता बताते हुए कहते हैं कि भक्ति स्वयं प्रमाणग्रंथ है, इसके लिए किस प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यदि शांतिप्राप्ति और परमात्माचरण है तथा अन्य कर्म, जान योग की अपेक्षा सुलभ है। प्रेमी भक्तों की माहिति बताते हुए नारद मुनि कहते हैं: - “भक्ति एकान्तिनो मुख्या।” अर्थात् भगवान् का अनन्य भक्त परम श्रेष्ठ है। ऐसे भक्त “तीर्थिकुर्विनि, तीर्थीनि सुकर्मीकुर्विनि तर्कः र्वा शास्त्राणि” अर्थात् वे तीनों को सुनीचर, कर्मों को सुरक्षित तथा शास्त्रों को सत्य शास्त्र कर देते हैं। उन भक्तों में जाति, विधा, रूप, वृद्धि और मविधा का भेद नहीं है। भक्ति को मार्ग में आने वाले विचार तथा उनके निर्देश का उपयोग बताते हुए नारद कहते हैं कि भक्ति को चाहिए कि भक्ति को वाद-विवाद नहीं करना चाहिए क्योंकि वाद विवाद में उत्तर-प्रत्युत्तर बढ़ने से माया करने से भक्ति नष्ट होती है। भक्ति को भक्ति शास्त्र का मनन तथा भक्ति को बढ़ाने वाले कर्म करने चाहिए। साधक को अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आत्मरक्षा आदि  

1. नामभुवू - सू० / 46.
2. वंडी- सू० / 50.
3. वंडी- सू० / 67.
4. वंडी- सू० / 69.
आचार्यीय सद्वाचरों का सदेव पालन करना चाहिए तथा हर समय सर्वभाव से निषिद्ध होकर केवल भगवान का ही भजन करना चाहिए। इस प्रकार की भक्ति से भगवान उपस्थि होते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ में देवर्षि नारद भक्तिवत्त्व का उपदेश देते हुए उपदेश को रूप में चरित हैं।

नारद पश्चातः

भगवान् धर्म के समृद्ध में नारद उपविष्ट पश्चातः ग्रन्थ धर्मशास्त्रीय विषय का संसार-प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। पश्चातः अपनी अनेक विशेषताओं की प्रधानता के कारण मनुसिद्धांत, आगमसिद्धांत, तत्त्वसिद्धांत और तन्त्रसिद्धांत के भेद से चार भागों में विभक्त है। पश्चातः शास्त्र में भगवान् के मुख्यविद्वत्त से प्रकाशित होने के कारण रत्नेऽग्नि नाम से प्रसिद्ध ‘सात्वत सहिता’ ‘पौष्टसहिता’ तथा ‘यमसहिता’ को विषय प्रधानता दी गई है। इस रत्नेऽग्नि सहिताओं की जो सात्वतसहिता है, उसे भगवान् वासुदेव ने भगवान् संकर्षण को द्वारा के अन्त और कलियुग के प्रारंभ में सुनाया। परम्परा द्वारा प्राप्त उसी पश्चातः शास्त्र को देवर्षि नारद ने अन्यान्य गहरायियों को मलयाचल पर्वत पर सुनाया। यह सात्वत सहिता नारद पश्चातः के नाम से प्रसिद्ध हैं, इसमें पाँच धार्मिक तथा सात अध्यात्म हैं।

इस शास्त्र को आचार्यों द्वारा महोपनिषद् के नाम से भी पुकारा जाता है। सात्वत धर्मविषयों में अथवा भगवतों के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण और पत्रोपदेव ग्रन्थ है। इस शास्त्र के गुरुकृत प्रचारक और आचार्य देवर्षि नारद हैं।

इस शास्त्र में श्रीकृष्ण, श्रीगोपाल और श्रीराम की प्रसंगित, इनके पूजन की विधियाँ, इनके सन्त, सहस्रनाम तथा कक्ष आदि का वर्णन मिलता है। इसमें सर्वोच्च प्रमुखता के साथ वर्तमान भक्ति, तथा इसके द्वारा भक्तवन्धन से युक्ति और गोलक की प्राप्ति के उपायों का प्रतिपादन किया गया है। अन्त के दो अध्यायों में योगकल्याण, धार्मिक, पद्धति और दोषकृगीजारण की चर्चा है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में बालकृष्ण की महिमा का अधिक विश्वास से वर्णन मिलता है। श्रीकृष्ण का महात्म्य और उनकी पूजा के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने के
इत्यादि नारद एक भविष्यवाणी से प्रेरित होकर कौलास पर्वत पर जाकर भगवान्
शिव से उपदेश ग्रहण करते हैं। कौलास पर्वत पर शिव के सात भजनों से युक्त स्वर उन
में प्रवेश करते पर नारद को श्रीकृष्ण के जीवन, विशेषत: बाल्यकाल से संबंधित
चित्र दिखाई पड़ते हैं। बाद में नारद को विद्या गये उपदेशों में स्वयं शिव भी इस
बात को बार-बार स्वीकार करते हैं कि उनके आराध्येवं वास्तव में श्रीकृष्ण ही
हैं। इस ग्रन्थ में श्रीराधिका को स्वीकारकर्मों में उच्चतम स्थान दिया गया है।

"श्रीकृष्णो जगता तातो ज्ञानमाता च राधिका।
पितुः सद्गुणो भाता वन्धु पूज्या गरीयसी।"

भगवान् शिव राधा सहायतामाक यामाहाय की चर्चा करते हुए इस विचार को
अपने प्राणों के समान बनाते हुए कहते हैं कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति और भक्ति
से इसका निरंतर पाठ करते हैं।

"पुराणोधितात्तेजु पश्चात्तेजु पश्चातु।
अतीव पुण्यद शुद्भु सर्वप्राप्तवानमु।"

भगवान् हरि भक्तों की रस्का का संकल्प लेते हुए कहते हैं कि मैं जो हरि
भक्तों से ब्रज करने वालों को दप्त देने के लिए तथा भक्तों की रस्का के लिए
यशूल धारण करता हूँ। इस प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ, वैष्णव धर्म तथा उसके आदि-देव
श्रीकृष्ण और राधा के महाअत्मा से आत-प्रोत है। देवर्षि नारायण को यो व्यक्ति
का उपदेश भगवान् नारायण तथा शिव से प्राप्त हुआ उसी चारों वेदों से युक्त एवं
सांस्कृतिक भाषाओं के पश्चात् नामक महोपलिपद को उन्होंने ब्रह्माण्ड के क्रियाकर्मों
को तथा पर्वत पर ऋषिगण को सुनाया। इसलिए भागवतधर्म के मूलधार सातत्तु
सहिता के सर्वस्त्र, मूलार्षिक हमारे हमारे चतुर्वत्नक देवर्षि नारायण है।

स्मृति ग्रन्थों में नारद
स्मृति ग्रन्थः

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञयो धर्माशास्त्रं तु वे स्मृति।"

1. नारम्भ- 6/7.
2. बाहु- 2/6/2.
अर्थात् वेदों को श्रुति कहा जाता है और स्मृतियों को धर्म कहा जाता है। इन धर्मशास्त्रों की गणना वेदांज्य के कत्प्युत्रों के अन्तर्गत होती है। कत्प्युत्रों के चार भाग हैं; जैसे- शौक्तसूत्र, गुरुसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्सूत्र। इन धर्मसूत्रों के अन्तर्गत ही धर्मशास्त्र अर्थात् स्मृतिप्रेमों का समावेश है। श्रु ध्रुतु के सिद्ध प्रत्यय करने पर श्रुति शब्द निष्पत्त होता है। “श्रूयते इति श्रुति:” प्राचीन काल में गुरुमूल से उपदेश सुनकर उसे कण्ठाघ्र करने के कारण स्मृति कहा जाता था। स्मृति ग्रन्थों को आधार पर ही न्यायशास्त्र टिका है।

मनुस्मृति:

स्मृति ग्रन्थों में मनुस्मृति, नारद स्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति प्रमुख ग्रन्थ हैं।

श्रीरक्षेरशासी भगवान मनु ने सर्व प्राणियों के हितार्थ आचार फर्मान के संरक्षण हेतु इस मनुस्मृति नामक धर्मशास्त्र की रचना की, जिसमें उन्होंने देवबिंच नारद को न्यायशास्त्र का चौथीय प्रकरणों में उपदेश दिया है। जिसमें संसार की सूर्ति, प्राणियों का प्रविभाग, न्याय, वेद का प्रभाव देखता, परिस्थितियों का लक्षण, वेद और वेदांज्यों के अनुसार यज्ञ का विधान, आचार, व्यवहार, काभ्यकृत्य, राजधर्म, व्याकरण के दो विभाग, विवाहादि न्याय, स्री और पुरुषें का वैकल्प्य धर्म, दायवाद, श्रावविधान, शौचालय की विकल्प व्यवस्था, भक्षयाभक्ष्यलक्षण विक्रेय और अविक्रेय की प्रोत्साह, पालकन्नेद, स्वर्ग-नरक वर्णन, प्राविभूतित और उपनिषदों के रूप स्तंभ का वर्णन किया गया है। मनु महाराज ने 1008 अध्यायों में तथा 100000 श्लोकों इन सब विषयों को उपनिषद करके इस शास्त्र का उपदेश देवविचार नारद को दिया। वह शास्त्र मनु स्मृति के नाम से विश्वास है। मनु स्मृति में देवविचार नारद जिससे के रूप में दर्शनीय हैं।

नारद स्मृति:

महाराज मनु द्वारा न्याय शास्त्र का उपदेश प्राप्त करके देवविचार नारद ने महर्षि मार्कण्डेय को इसी धर्म शास्त्र का उपदेश 12000 श्लोकों में दिया। नारद स्मृति में देवविचार नारद उपदेह्ता के रूप में उपदेश दिया है। तथा श्रुति के प्रथम
अध्याय व्यवहारमालूका पर उपदेश देते हुए देवर्षि नारद भार्तकेश्वर ऋषि से कहते हैं :–

“धर्मेकताना: पुरुषा यदासन्न सत्यवादनः।
तत्ता न व्यवहारोभूमी वेषो नापि मत्सरः।”

अर्थात् जब लोग सत्यवादी थे तब मुक्तमा नहीं होता था। लेख और मत्सर भी नहीं थे। देवर्षि नारद इस स्पृहा ग्रन्थ में न्याय के लिए आपस्मक बातें बताते हुए कहते हैं कि विवादों में दो पक्षों में सत्यिर्विवेय का निर्णय करने के लिए दो विधियाँ निकलती हैं, एक है लिखित पत्र और दूसरा है साक्षी :–

“बिलिवत साक्षिणाचेव द्वी विधी परिकीर्तितो।
संदिष्ठार्थी विशुद्धयर्थ द्वयोविवलमानयोः।”

मिथ्याचारियों का उल्लेख करते हुए नारद स्पृहा में कहा गया है जो सभ्य सभा में जाकर मौन रहते हैं या वधार्थ नहीं बोलते वे सब मिथ्याचारी होते हैं।

अध्याय के चार पाद होते हैं। एक पाद अधर्मकर्मों का, एक पाद साक्षी का, एक पाद सभ्यों का और एक पाद राजा का होता है :–

“ये तु सभ्यः सभ्यां प्राप्य तूणों ध्यायन्त आसते।
यथा प्राप्त न बुद्धेः सर्वेऽक्तवादिः।
पादःधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिण्मृच्छति।
पादः सम्बस्यः सर्वान्त यादो राजान्मृच्छति।”

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में तत्काल अर्थात्त्व चोरों की किसी भी बताई गई है– कपट से नायपन्न में कश भेंटी करना, उत्तुको लेना, बलपूर्वक काम करना,
कित्व (शूलकदा करने वाला) वेशया, इत्यादि चोरी करने वाले कहे गये हैं। इसके
अतिरिक्त इस धर्म ग्रन्थ में राजा सम्बन्धी व्यवहार विषय वर्णन, दण्डपालन,

1. व्याय गाढ़ – 1/1
2. नागरूपूर्ण – 1/3.
3. दृष्टि – 3/11–12.

56
चाक्षर्यम्, साहस, दयभाग, लोकप्रियोम्, सीमान्य, क्रय-विक्रय सम्बन्धी न्याय, इत्यादि का वर्णन किया गया है।

उज्योतिष्ण शास्त्र में नारदः

उज्योतिष्णशास्त्रः

छ: वेदां में उज्योतिष को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए उसे वेदपुरुष का चक्षु कहा गया है। “उज्योतिष्णमयनं चक्षुः।” वेद की उपयोगिता यज्ञसम्पादन में है। “उज्योतिष: अधिकृत्य कृतं शास्त्रं उज्योतिष्ण शास्त्रम्” इस अर्थ में ‘अण’ प्रत्यय होकर उज्योतिष बना तथा ‘उज्योतिष: अस्ति अस्मिन् पवार्यं’ ‘अश्विनिवेश्यो अत्र’ इस सूत्र से उज्योतिषम् बना। “उज्योतिषां सूर्यदिव नवग्रहाणां अश्विन्यादि सप्तविश्चिति नक्षत्राणो वौधधंकं शास्त्रम्” अर्थात् सूर्यदिव यह एवं अश्विन्यादि नक्षत्रों तथा धूमकेतु का बोध करने वाला कालव्यक्तिक शास्त्र उज्योतिष शास्त्र है। यह करने के लिए उपयुक्त समय का ज्ञान होना आवश्यक है। विशेष यह, विशेषतः काल का अपेक्षा रखता है। कुछ यथों का विधान संवत्सर की दृष्टि से होता है तथा कुछ यह अतिरिक्त की दृष्टि से किये जाते हैं। जैसा कि पौराणिकावलोकण में कहा गया है:

“बस्तन्ते बाष्णोडिनमाद्वितीयं, तीर्थ्ये रजस्य आद्वितीयं।
मर्दिन वैदेय आद्वितीयं।”

संवत्सर और अतिरिक्त की भौतिक रूप से कोई विशेष यथों किसी विशेष भाषा या किसी विशेष तत्त्व में ही किया जाता है। जैसे- ताण्डुल्य ब्राह्मण में कहा गया है, ‘फलुवानी पूर्णमासे वीवीयेत्रू’ उचित नक्षत्र और काल में करने से ही यथार्थ वार्षिक फाल देने वाले होते हैं। “यो उज्योतिषं वेद च वेद यज्ञम्” अर्थात् जो व्यक्ति उज्योतिष को जानता है, वहीं यह जानना है। उज्योतिष वेदां, गणना पर आधारित है। उचित काल-ज्ञान के लिए यह-नक्षत्र आदि की भौतिक दशा को ध्यान में रखा जाता है। यह सब गणित पर है निर्भर है। इसलिए उज्योतिषः

1. पाण्डितः
2. वैदेयः - 1/1.
और गणित ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। वेदाङ्ग ज्योतिष में गणित को इस प्रकार मूर्धन्य स्थान दिया गया है :-

"यथा शिखा मयूराणा, नामानां मणयो यथा।
तत्वत: वेदाङ्गशास्त्राणां, गणितं, मूर्धनि स्थितम्।"

अर्थात् जैसे मयूरों की शिखा उनके सिर पर होती है; जैसे सुंदर की मणियाँ उनके सिर पर होती हैं, उसी प्रकार सब वेदाङ्गों के ऊपर गणित (ज्योतिष) वेदाङ्ग रहता है। वेदाङ्ग-ज्योतिष में गणना की दृष्टि से पाँच वर्ग माने गये हैं :- (1) संवस्तर, (2) परिवस्तर, (3) इवावस्तर, (4) अनुवस्तर तथा (5) इत्यतः। इस ग्रन्थ में बारह राशियाँ तथा सातवाँ नक्षत्रों के साथ उत्तरार्ण और दक्षिणार्ण के समय में सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति का भी वर्णन मिलता है।

देवर्षि नारद एक महान् ज्योतिषाचार्य के रूप में जाने जाते हैं। उनके ज्योतिष सम्बन्धी अपूर्व ज्ञान की छाया समस्त आर्य ज्योतिष पर पड़ती है। नारदीय ज्योतिष, विकसत्य ज्योतिष के नाम से जाना जाता है, जिसमें नारद दाहिता, नारदीय सिद्धान्त तथा नारदीय-होरा-जातक इन तीन ग्रन्थों का समावेश है।

नारदीय विकसत्य ज्योतिष के इन ग्रन्थों में देवर्षि नारद का उपवेष्ठा रूप दर्शिया है।

नारदीय सिद्धान्त में नारद -

इस सिद्धान्त ग्रन्थ में देवर्षि नारद ज्योतिषाचार्य के रूप में दर्शिया हैं। हमारे प्रसिद्ध ज्योतिष सिद्धान्त देवर्षि नारद द्वारा उपवेष्ठ नारदीय सिद्धान्त के आधार पर ही बने हैं। प्राचीन नारदीय सिद्धान्त में 187 शोलक पाये जाते हैं, जिनमें से लगभग सभी शोलक दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थों के सहायक हैं। आर्य सिद्धान्तों में सबसे अधिक सूक्ष्म, प्रभावण और समृद्ध सूत्रों गणना युक्त सूर्य-सिद्धान्त माना गया है। यह सूर्य सिद्धान्त चौथा अधिकारों और अध्यायों में विभाजित है। पूर्वी में उसके ग्यारह अधिकार हैं और उत्तरार्ण में सीं अध्याय हैं। सूर्य सिद्धान्त के निर्णय

1. ज्योति-शलो-4।
2. शैली
पूर्वथ एवं उत्तरार्थ को पाँच से श्लोकों में नारदेय सिद्धान्त के ही अधिकांश श्लोक असरदर निर्लग्न हैं। मध्यमधिकार तथा सुप्रसंगतवादी ये दोनों नारद सिद्धान्त के श्लोकों से ही रचित हैं। नारदेय सिद्धान्त में आरम्भ के लगभग सात श्लोकों में पारी-गणित का वर्णन है, जो आधुनिक पारी-गणित के ग्रन्थकारों का मूलक प्रलिप होता है। नारदेय-सिद्धान्त के पारी-गणित के इस श्लोक को अविकल भास्कराचार्य ने अपनी लीलावती नामक पारी-गणित की व्यस्तविधि में उद्धृत किया है।

“छेत्र गुण मुख छेत्र चर्म मूल पद तुलिप।
चर्म स्त्र स्वमूहण कुर्याद दूसये शािशिष्यते॥
अथ स्वांसाधिकोनेतु लवादचोनो हरो हर।
अशस्तविकृतस्त्र विलोमो श्रेपमुक्तत्व॥”

गणितसिद्धान्त में नारदेय ज्योतिष का गहन भादन को साथ-साथ फूलि विषय में भी यह ज्योतिष, अन्यन्य फूलि सहिताओं और होराओं का मूलधार गती होता है।

नारद-सहिताम में नारद-

“बैजेप श्लोक ज्योतिष शास्त्रीय ग्रन्थों में नारद सहिता का आग्रह स्थान है। यह ग्रन्थ वेदांश नारद द्वारा उपविष्ट है। बालाह मिहर के अपने पूर्णांत सहिताओं में नारद को भी मिलाया है तथा उसके पूर्ण के सहिताओं में एक मात्र नारद की ही सहिता ऐसी है जिसमें अधिकांश विषयों का समावेश है। नारद-सहिता के अवलोकन से यह विद्वान् होता है कि देवर्षि नारद एक महान् ज्योतिषाचार्य थे। परस्तरी काल के सहिता सहिता के लाए नारद सहिता को एक उपयोगी ग्रन्थ के रूप में माना जा सकता है। इस ज्योतिषशास्त्र के मुख्य अंतर्गत आचार्य है जिसमें नारद भी एक है, उनके नाम हैं :- सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अचि, परशार, कश्यप, नारद, गर्भ, श्रीचि, मनु, अक्षि, लोमश, पौलिश, च्वन, यवन, भूमु और शौनक।

1. अविकल भास्कराचार्य विश्वसन पारी-गणित लीलावती- श्लोक 28/29.
“सूर्य: पितामहोत्सवो विस्तितमा: परासर:।
कक्षयो नारवो गम्यं सर्विञ्जर्णवल्लितम्।।
लोभश: पौलिशश्च च्यवणो यवनो भूयु:।
शौकोप्तादश्च चैते ज्योतिः: शाष्ट्रप्रवर्तका:।।

नारदीय सहितार्थ में नारद ने भी अष्टदश चृत्य प्रणीत ही ज्योतिष शास्त्र गाना है, उनके अनुसार :–

“बहुतावर्त वसित्वं विरिन्यं: पौलिशश्च लोमरो।
मरीचिरेमगध्रायायो नारवो शौको भूयु:।।
च्यवणो यवनो गम्यं: कक्षय: परासर।
अष्टदशैते सम्भीव ज्योतिः: शास्त्र प्रवर्तका।।”

नारद सहिता में कुल पचपन अध्यायों का समावेश है, जिनमें सर्वप्रथम अष्टदश ज्योतिषशास्त्रकारों का उत्तेजन करने के बाद मेधादि राज्यों का वर्णन है। तपस्यात् शुक, शनि, कुंज इत्यादि ग्रहों की स्थिति का वर्णन, प्रतिपदा आदि तिथियों के स्वामिं अभिन, ब्रह्मा, गोपि, गणेश, ईश्वरी निरूपण है और तिथियों की संज्ञा, नन्दा-भद्रा-जन्मा-दिक्त-पूर्णा कहीं कहीं हैं। शुक्लपक्ष एवं चूर्ण पक्ष की तिथियों में श्रेष्ठ तिथियों तथा इन तिथियों में कर्तिय एवं अकर्तिय तथा श्रव-अश्रव का वर्णन किया गया है। जैसे:– विवाह, प्रत बन्ध यात्रा, देवप्रतिष्ठा, आभूषण, गृहस्थता तथा सम्पूर्ण पौष्टिक कार्य हिरीय तिथि को करना लाभदायक है। समार्थता करना, उपनयन कर्म विवाह, प्रहास्तिः, सभी स्थिर चर तर्क एवं मानसिक उत्तम प्रशंसी तिथि में करना उत्तम होता है :–

“विवाह भौज्जी यात्रा च सुरस्थापन भूणमा।।
गृह पृष्ट्यनिर्धार्त कर्म हिरीयायां विधीयते।।
यानोपयोगनोहां प्रहास्तिः पौष्टिकम।
चारस्थिराविलं कर्म पञ्चम्यां मन्दीलोत्सवम्।।”

1. नारदः 1/2, 3.
2. वधी 4/6, 9.
इसके बाद रविवार, सोमवार इत्यादि सातो बारों में कौन-सा कर्म उत्तम तथा कौन-सा निम्न है, इसका निर्णय किया गया है। रवी, सोम इत्यादि बारों के गोर, रक्त, पीत, ग्होंट्ट इत्यादि वर्ष बताये गये हैं। नववार नवार कर्म अकर्म का वर्ण है। विकुञ्ज- नाड़ि- वज्र इत्यादि योगों में किये जाने वाले कार्यों से मिलने वाले दुष्कृति और अशुभ फल बताये गये हैं। लाल विचार, गर्भधान, पुंडरयं- सीखात्तोनायण संस्कार के बाद शिशु जन्म होने पर जातक कर्म संस्कार-नामकरण- अन्नप्रायण- मुण्डन- उपनयन- छुरिकावनन- विवाह संस्कार का वर्ण विस्तृत वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत जना जना, ब्रह्म, दैव, आर्य, गान्धर्व, पैशाच इत्यादि विधानों पर विचार व्यक्त किया गया है। वास्तु लक्षण अध्याय में नवे गृह में प्रवेश सम्बन्धी, वास्तु काम सम्बन्धी, गृह की दिशाओं में उचित कामों सम्बन्धी विचार है। यात्रा प्रकरण में यात्रा के लिए शुभ नक्त, लाल, तिरंगा, काल इत्यादि का वर्णन तथा किस दिशा में किस दिन यात्रा करनी चाहिए और किस दिन नहीं, इस सम्बन्धी विचार व्यक्त है। गृह प्रवेश के लिए शुभ नक्त, लाल, तिरंगा, नृसिंह, अनाकुष्ट, अतिलक्षि, भूकम्प, उत्तम अथवा अधिम फलंदाज प्राप्त होने के प्रारूपक संकेतों का वर्णन है। उत्तम अध्याय में देवमंत्र में वदलाव, आकाश में ध्रुवकोट, रात्रि में कौंक्षिप की व्यक्ति होना अशुभ तथा अशुभ सूचक कहा गया है। बिशम होकर अस्तमित में दिखाने वाले इन्द्रधनुष के अशुभ फलों का वर्णन, नक्त नक्त में जन्म लेने पर गुण्य की प्रकृति किस प्रकार की होती है इसका वर्णन किया गया है; जैसे- अधिकारी नक्त में जन्म लेने वाला व्यक्ति, सुन्दर, आकाशायन, दृष्टि, बुद्धिमान, आकाश द्वारा बाहुल्य होता है। भगवान नवादर्शात्म पुजा कामशास्त्र में निपुण सत्यवादी, दृढवृती, निरोग, सुन्दर, अल्पाधारी और सुविधी होता है :-

“सुरूपः सुभोगो रश्को महत्मान्यभूमणणप्रियः
अस्मायावलम्बः शूरो यो ज्ञातवचविवेचनः\nकामोपसिद्धार्थशाश्च तत्त्ववादी दृढ्वृत्तः
अरोगः सुभूमो जातो भरणम् लघुभूक्षुबधी।”

1. नृसि - नवादर्शात्म - 1/2.
माघ चैतादि मासों की शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष की तिथियों को रखे जाने वाले प्रत्येक से मिलने वाले फल का वर्णन करने के बाद आन्तर्गत में, अरुण लक्षण अध्याय में विभिन्न तिथियों, नवरत्कों के अनुसार अरुण कर्म द्वारा प्रतिवेदन की तृष्णा तथा अनन्त पुण्य फल का वर्णन करने के साथ ही इस ग्रन्थ की समाप्ति होती है।

नारदीय- होरा- जातक में नारद-

नारदीय सहिता एवं नारदीय सिद्धान्त के समान ही नारदीय- होरा- जातक नामक ग्रन्थ में भी देवर्वी नारद उपदेशक की भीति दर्शनीय है। यह ग्रन्थ ज्योतिषशास्त्र पर आधारित है। इस जातक में 366 स्लोक ही हैं, किन्तु इतने छोटे ग्रन्थ में जातक- समर्थनीय फलावधि का इतना सुन्दर वर्णन है तथा इतने विकस्त्तायों एवं राजस्वाज्ञान का वर्णन है कि जिसका अतिथ अन्याय जातक ग्रन्थों में और बड़े-बड़े होरा- ग्रन्थों में भी नहीं मिलता।

इस प्रकार सारांश यह है कि देवर्वी नारद के विक्रम ज्योतिष-“सिद्धान्त, सहिता और होरा” नामक तीन विभाग बड़े ही महत्वपूर्ण और अन्याय सिद्धांत, सहिता एवं होरा ग्रन्थों के आधारभूत है। सम्पूर्ण विक्रम ज्योतिष ग्रन्थ की शताब्दी सन 1710 है। इस प्रकार नारदीय ज्योतिष देवर्वी नारद के अपूर्व विचारों का भण्डार एवं विक्रम ज्योतिष की प्रांतीता का सबसे बड़ा प्रमाण है।

उच्च विभेदन से अधिक है कि वैदिक साहित्य में अध्येय, अर्थवृद्धि, ऐतरेयार्यापथ, झांसोम्पनिक, तथा वेदाङ्ग साहित्य इत्यादि में परोपकारी नारद कहीं अपने उपदेशों के माध्यम से तथा अन्यत्र जिन्दाबादों के द्वारा, राज्यों, राजा में इत्यादि का उल्लेख करते हुए उद्देशित होते हैं। वैदिक साहित्य में देवर्वी नारद मार्गवृद्धि, विद्वृद्धि सम्पन्न, सर्वविद्यानिधि, हितप्रद, विकालदारी, जिन्यानु शिश्न इत्यादि रूपों में एक बड़ी भूमिका निभाते हुए दर्शनीय हैं।

*.*.*.*.*